वार्षिक रु. ८० मूल्य रु. १०
विवेक ज्योति
वर्ष ५३ अंक १२
दिसम्बर २०१५
रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

दिसम्बर २०१५

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५३
अंक १२

वार्षिक ८०/– **एक प्रति १०/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ३७०/–

आजीवन (२० वर्षों के लिए) – रु. १,४००/–

(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएं

विदेशों में – वार्षिक ३० डॉलर; आजीवन ३७५ डॉलर (हवाई डाक से) २०० डॉलर (समुद्री डाक से)

संस्थाओं के लिये –

वार्षिक ११०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ५००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com

आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९

(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)

रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

'विवेक-ज्योति' की मूल्य-वृद्धि सूचना

सम्माननीय पाठको ! 'विवेक ज्योति' कई वर्षों से घाटे में ही चलती आ रही है। पाठकों पर अधिक भार न पड़े, इसलिए हमने पिछले वर्ष बहुत कम मूल्य-वृद्धि की थी। सभी सामग्रियों – कागज, मुद्रण के गुणवत्ता सुधार और डाक, वेतन आदि की दरों में पर्याप्त वृद्धि से 'विवेक-ज्योति' पर आर्थिक भार बहुत अधिक पड़ रहा है। इसलिये हम इसका थोड़ा सा मूल्य बढ़ाने जा रहे हैं। अब **जनवरी-२०१६** से नयी मूल्य-राशि होगी – **वार्षिक शुल्क रु. १००/-, एक प्रति रु. १२/-, पाँच वर्षों के लिये रु. ४६०/- और आजीवन शुल्क (२० वर्षों के लिये) – रु. १७००/-, संस्थाओं के लिये वार्षिक रु. १४०/- और पाँच वर्षों के लिये रु. ६५०/-**। आशा है आप हमारा पूर्ववत सहयोग करते रहेंगे। - **स्वामी स्थिरानन्द, व्यवस्थापक, 'विवेक-ज्योति' कार्यालय**।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामीजी की यह मूर्ति अमेरिका स्थित वेदान्त सोसायटी आफ सदर्न केलिफोर्निया के उपकेन्द्र रामकृष्ण मोनेस्टरी, ट्राबुको की है। यह रामकृष्ण संघ का एक शाखा-केन्द्र है। इस मूर्ति का निर्माण अमेरिका के प्रसिद्ध मूर्तिकार माल्विना हॉफमेन ने किया था और ४ जुलाई, १९५१ को विशेष-पूजा के साथ आश्रम प्रांगण में इसका लोकार्पण किया गया।

सम्पादक महोदय से मुझे भी कुछ कहना है

परम आदरणीय सम्पादक महोदय,

'विवेक ज्योति' का जून २०१५ का अंक मिला। पत्रिका में कबीर पदावली, पुरखों की थाती, विविध भजन, सम्पादकीय, आदर्श को पकड़े रहो, स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त, साधक जीवन कैसा हो?, वेद – जैसा मैनें पाया, दुख का सकारात्मक स्वरूप, आदि आलेख बहुत पसन्द आए। योग का महत्त्व, स्वस्थ जीवन हेतु दिनचर्या, जोड़ो भारत, बच्चों का आँगन, काव्य लहरी आदि रचना सामग्री रोचक व मानव जीवन के लिए उपयोगी है। नवयुवकों के लिए 'वर्तमान परिवेश में छात्रों का कौशल विकास और सामाजिक दायित्व' प्रेरणास्पद है।

विवेक ज्योति का हरेक अंक अध्यात्म जिज्ञासुओं धर्मप्रेमियों एवं स्वाध्याय स्नेहियों के लिए परम उपयोगी है। उत्कृष्ट प्रकाशन के लिए हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ। – **बाबूलाल परमार, सेवानिवृत्त प्रधानाध्यापक, रतलाम**

सम्माननीय स्वामीजी, मानव के नैतिक, आध्यात्मिक, भौतिक विकास के लिए 'विवेक ज्योति' पत्रिका उत्कृष्ट महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। अगस्त अंक में स्वतन्त्रता संग्राम के क्रान्तिकारियों के प्रति माँ सारदा का स्नेह जन-साधारण को ज्ञात हुआ, जो उन्हें बताया नहीं जाता। वर्तमान भोगवाद भौतिक युग में युवक वर्ग भटक रहा है तथा तनावग्रस्त हो रहा है, उन्हें यह पत्रिका शान्ति और उन्नति हेतु दिशा दे रही है। मानव इस पत्रिका से प्रेरणा लेकर शक्तिशाली बनकर परिवार, समाज और देश की उन्नति को शिखर पर ले जा सकता है। भारतीय संस्कृति और विश्वगुरु अच्छा लेख है। इस पत्रिका को प्रत्येक शिक्षित वर्ग के पास पहुँचाने का पाठक गण प्रयास करें। इसके लिए एक स्थायी कोष भी बनाया जाय। मेरी बहन ने इसके लिए पाँच सौ रूपये भेजे हैं। कृपया इसे स्वीकर करें। धन्यवाद। – **श्रीराम अग्रवाल, डोंगरगढ़ (छ.ग.)**

दिसम्बर माह के जयन्ती और त्योहार

१९	**स्वामी प्रेमानन्द**
२५	**क्रिसमिस डे**

वेद की ऋचाओं में राष्ट्रसमृद्धि हेतु प्रार्थना

ॐ आब्रह्मन् ! ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा-
राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो
जायतां दोग्ध्रीधेनुर्वोढाऽनड्वानाशुस्सप्तिः
पुरन्ध्रिर्योषा जिष्णू रथेष्ठास्सभेयो युवाऽस्य
यजमानस्य वीरो जायतां, निकामे निकामे
नः पर्जन्यो वर्षतु, फलवत्यो न ओषधयः
पच्यन्तां, योगक्षेमो नः कल्पताम् ।।
(शुक्ल यजुर्वेद - २२/२२)

हे ब्रह्मन् ! हे परमात्मा ! हमारे देश में प्रजा ब्रह्मवर्चस वाली, गौरवशाली परोपकारी, सुशिक्षित परिश्रमी और विद्वान हो। हमारे महान राष्ट्र की रक्षा के लिये शूर-वीर बाण आदि शस्त्रास्त्रों में दक्ष, शत्रुओं को पराजित करनेवाले, युद्धविजयी पराक्रमी महारथी योद्धा उत्पन्न हों । हमारे देश का पशुधन समृद्ध हो। हमारी गाएँ दूधारू हों। वृषभ भारवाही बलवान और घोड़े सबल द्रुतगामी हों। नारियाँ सुशील गुणवती, सुन्दर हों तथा हमारे राष्ट्र के कर्णधार युवक समर्थ, सभ्य, रथारूढ़, विजयी, यशस्वी और वीर पुत्र हों। राष्ट्र में सर्वत्र समय-समय पर इच्छानुसार वर्षा होती रहे, जिससे अन्न की फसल, औषधियाँ परिपक्व हों । हम अन्न और प्राकृतिक सम्पदा से सम्पन्न रहें । हमारा योग-क्षेम चलता रहे । हम सम्पूर्ण मानवता की कल्याण में प्रयत्नशील रहें ।

पुरखों की थाती

महानप्यल्पतां याति निर्गुणे गुणविस्तरः ।
आधाराऽऽधेयभावेन गजेन्द्र इव दर्पणे ।।४८०।।

– बड़ा गुणी व्यक्ति भी यदि गुणहीन का संग करे, तो उसके प्रभाव से तुच्छता को प्राप्त होगा। जैसा आधार होगा, वैसा ही आधेय भी हो जाएगा, जैसे विशाल हाथी भी दर्पण के प्रभाव से छोटा-सा दिखाई देने लगता है।

माता मित्रं पिता चेति स्वभावात्त्रितयं हितम् ।
कार्यकारणतश्चान्ये भवन्ति हितबुद्धयः ।।४८१।।

– माता-पिता और मित्र, ये तीन स्वभावतः शुभचिन्तक होते हैं। अन्य तो किसी कारणवश शुभचिन्तक होते हैं।

मित्रं प्राप्नुत सज्जना जनपदैर्लक्ष्मी समालभ्यतां
भूपालाः परिपालयन्तु वसुधां शश्वत् स्वधर्मे स्थिताः।
आस्तां मानस-तुष्टये सुकृतिनां नीतिर्नवोढेव वः
कल्याणं कुरुतां जनस्य भगवांश्चन्द्रार्धचूडामणिः।।४८२

– अच्छे लोगों को मित्र मिलें, देश तथा देशवासियों को लक्ष्मी प्राप्त हों, शासकवर्ग सदा कर्तव्यनिष्ठ बने रहकर पृथ्वी का पालन करें, पुण्यात्माओं की मानसिक तुष्टि हेतु नीति नववधू के सदृश आनन्ददायिनी हो और अर्धचन्द्र को मस्तक पर धारण करनेवाले भगवान शिव सभी मनुष्यों का कल्याण करें।

विविध भजन

हे रामकृष्ण भगवान मेरे

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

हे कृष्ण मेरे हे राम मेरे, हे रामकृष्ण भगवान मेरे ।
हे परम कृपामय परमेश्वर, हे प्रेमरूप घनश्याम मेरे ।।
जग के प्राणी को तारन को, पृथ्वी का पाप संहारन को ।
नव शाश्वत धर्म प्रचारन को, आए तुम मंगल धाम मेरे ।।
सब जीवों का उद्धार करो । सद्वृत्ति का विस्तार करो ।।
हे दीनबन्धु भगवान मेरे, सबकी भव-नौका पार करो ।।
हे कृष्ण मेरे, हे राम मेरे ...
तुम भक्ति-ज्ञान के दाता हो, प्रभु सबके भाग्यविधाता हो ।
प्रेम-दीप जले सबके हिय में, हे सुख-शान्ति निधान मेरे ।।
हे कृष्ण मेरे, हे राम मेरे ...

बाट जोहूँ मैं तोरी

स्वामी निखिलात्मानन्द

जिसका न हो कोई उसकी है माँ तू ही बाट जोहूँ मैं तोरी ।
असार जीवन में सार दे सारदा सुध न बिसरा मोरी ।।
जीवन पथ भरा काँटों से टूटा हृदय मेरा आघातों से,
आश्रय है मेरी केवल तेरी माँ आँखें स्नेह भरी ।।
कितने पापियों ने उन पद-कमलों में ढाली है विष की धारा,
हँसी मुख में हृदय तेरा माँ सदा ही करुणा भरा ।।
देवी या मानवी चाहूँ न जानना, चाहूँ तप्त हृदय शीतल करना ।
माँ माँ कह मैं पुकारूँ अंजलि अश्रु भरी ।।

अद्भुत यह संसार !

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती, झाँसी

अद्भुत यह संसार यहाँ पर
कोई किसी का सगा नहीं ।
फिर भी कौन है ऐसा जिसका
दिल दुनियाँ से लगा नहीं ।।
अद्भुत यह संसार ...

सभी समझते सभी जानते,
किन्तु न कहना कोई मानते ।
अपना बना के अपनों से ही
किसने खाया दगा नहीं ।।
अद्भुत यह संसार ...

क्षणभर भ्रम को दूर भगाता,
समय समय पर समय जगाता ।
लेकिन मोह की गहरी नींद से
जल्दी कोई जगा नहीं ।।
अद्भुत यह संसार ...

हरि ने अकारण नेह किया,
इस कारण ही नर-देह दिया ।
इसके बाद भी मूरख मनवाँ
प्रभु-पद-प्रीति में पगा नहीं ।।
अद्भुत यह संसार ...

क्या राजेश रंक की हस्ती,
ये तो उजड़नेवाली बस्ती ।
तो भी रहेंगे सदा यहाँ यह
भूत भ्रान्ति का भगा नहीं ।।
अद्भुत यह संसार ...

सम्पादकीय

सबमें अपनत्व का बोध कीजिए

मैं जब विश्वविद्यालय का छात्र था, तब राष्ट्रीय युवा योजना स्थानीय ईकाई द्वारा स्थानीय अन्तर्राष्ट्रीय युवकों का एक दिवसीय शिविर आयोजित किया था। शिविर बहुत अच्छा चल रहा था। उसमें ४ देशों के युवकों ने भाग लिया था। राष्ट्र की सेवा करने हेतु विकसित श्रेष्ठ चरित्र-निर्माण के विभिन्न पक्षों पर चर्चा चल रही थी, तभी लगभग २.३० बजे एक घटना के कारण पूरे शहर में कर्फ्यू लगा दिया गया। बड़ी कठिनाई से पुलिस से बात-चीत कर शहर के कोने-कोने से विभिन्न विश्वविद्यालयों से आए युवकों को उनके आवास भेजा गया। मेरे मन में उस रात बड़ा दुख हुआ कि आखिर हम क्यों अपने ही बन्धुओं से शत्रुता का भाव रखते हैं? क्यों हम अपने मूल स्वभाव परस्पर प्रेम, आत्मीयता को छोड़कर अस्वाभाविक परभाव, घृणा, द्वेष और पराएपन को अपने जीवन में आश्रय देकर अपने जीवन को अशान्त एवं विषाक्त बना रहे हैं? वर्षों बीत गए, लेकिन वह परस्पर असहिष्णुता की भावना आज भी समाज में सुरसा की तरह अपना मुख फैलाती जा रही है, और समस्त जन-मानस को विभिन्न जाति, धर्म, वर्ण आदि दलों में बाँट कर सामाजिक समरसता को नष्ट कर रही है। क्या इसका कोई समाधान नही है? क्या प्राचीन काल से ही प्रेम, शान्ति, अपनत्व का शाश्वत सन्देश देने वाले भारत में आज यह विभाजन, बौद्धिक और विकसित उदार भारतवासियों के लिए युक्तिसंगत है? आइए, शास्त्रीय तथ्यों और आत्ममन्थन से इसके निराकरण का अनुसन्धान करते हैं।

उच्च विद्यालय की संस्कृत पुस्तक में एक बड़ा प्रसिद्ध श्लोक था, जिसे सभी छात्र एक साथ उच्च स्वर से गाते थे। वह श्लोक युवा-मन में महान उच्च संस्कारों के साथ-साथ उपनिषद के ऋषियों की अनुभूतिपरक सर्वप्राणियों में एकत्व की भावना, सबमें अपनत्व की भावना का बीजारोपण करता है। शुद्ध, मृदु मन में सबके प्रति अपनत्व की भावना का उनमें विकास करता है। वह सुन्दर श्लोक है –

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पण्डितः।।

कितना सुन्दर यह श्लोक है ! इस एक श्लोक में ऋषियों के समस्त तप और साधना का सार विद्यमान है, संयम और लक्ष्यानुभूति का स्पष्ट दर्शन है। हम सभी ऋषियों की सन्तान हैं। हम सबको अवश्य इस श्लोक के तात्पर्य को अपने जीवन में आचरण करना चाहिए, तभी हम भारतमाता और भारतीय ऋषियों की सच्ची सन्तान कहलाने के अधिकारी होंगे।

इस महान अद्भुत श्लोक का अर्थ है – जो दूसरी स्त्री को माता के समान समझता है, जो दूसरे के धन को मिट्टी के ढेले के समान समझता है और सभी प्राणियों को अपने समान समझता है, सबमें अपनत्व का बोध करता है, वह पण्डित है, विद्वान है। श्लोक का तीसरा चरण 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' यह हमें समस्त प्राणियों के साथ एकत्व बोध, तादात्म्य बोध करने की शिक्षा प्रदान करता है।

अब प्रश्न उठता है कि क्या शास्त्र हमें बलात् ऐसी शुभ भावना प्रकट करके को कहता है या वास्तव में हमारा स्वरूप, हमारा स्वभाव ही ऐसा है? शास्त्र-अध्ययन और थोड़ा-सा विचार करने पर आप इस तथ्य की वास्तविकता से परिचित हो जाएँगे। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं – **ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति** – हे अर्जुन ! सभी प्रणियों के हृदय में ईश्वर विद्यमान हैं। इससे सभी प्राणियों में ईश्वरीय एकात्मता का बोध होता है। ईश्वर हमारे परम प्रेमास्पद हैं, अपने हैं, इसलिए सभी प्राणी भी हमारे आत्मस्वरूप ही हैं। तब किसी में भी परत्व, पृथकत्व की भेदता कैसी !

इस जगत के स्रष्टा ईश्वर हैं। सभी ईश्वर की सन्तान हैं। इस दृष्टि से भी हमें किसी के प्रति परायापन का भाव नहीं लाना चाहिए। परायापन का भाव हमारे वास्तविक स्वरूप को आच्छादित कर हमें सीमित, सान्त और अनुदार बना देता है। जबकि हमारा स्वरूप असीमित, अनन्त और उदार है।

श्वेताश्वतरोपनिषद (४-१७) भी **एष देवो विश्वकर्मा महात्मा, सदा जनानां हृदये संनिविष्टः** – 'यह सर्वव्यापी देव जगत्कर्ता है और सदा सभी प्राणियों के हृदय में निवास करता है', अपनी इस उदात्त घोषणा से ऋषि सभी लोगों में ईश्वरीय एकत्व का प्रतिपादन करते हैं।

वास्तव में मानव सबमें एकत्व, अपनत्व न देखकर परत्व देखता है, इसीलिए वह दूसरों से घृणा, द्वेष करता है। चोर दूसरे की सम्पत्ति समझकर चोरी करता है। यदि वह अपना समझता तो, चोरी नहीं करता। वह दूसरे की सम्पत्ति को चुराकर अपना बनाने के लिए चोरी करता है।

कोई पर समझकर दूसरों से घृणा करता है। पराएपन का बोध कर दूसरे की सम्पत्ति को हड़प लेता है। भ्रष्टाचार, परधन लोभ, कुदृष्टि, परपीड़न, सभी परत्वबोध के कारण हैं।

आध्यात्मिक दृष्टि के साथ-साथ यदि राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनावें, तब भी हममें एकत्व विद्यमान है। यदि सभी यह समझें कि देश की सारी सम्पत्ति राष्ट्र की है और यह राष्ट्र हमारा है। समस्त राष्ट्रवासी हमारे हैं। अपने प्रिय राष्ट्रवासियों के कल्याण के लिए राष्ट्र की समस्त वस्तुओं की रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है, तो कोई भी व्यक्ति किसी भी वस्तु को नष्ट नहीं करेगा, उसका दुरुपयोग नहीं करेगा, बल्कि उसका संरक्षण और संवर्धन करेगा। कोई भी किसी से घृणा द्वेष नहीं करेगा, अपितु सबसे प्रेम करेगा।

ईशावास्योपनिषद में ऋषि पुराकाल से उद्घोषणा करते चले आ रहे हैं –

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ।।

– जो सम्पूर्ण प्राणियों को आत्मा में ही देखता है और समस्त प्राणियों में भी आत्मा को ही देखता है, इसलिए वह किसी से घृणा-द्वेष नहीं करता है।

सभी प्राणियों में उस एक अद्वितीय शाश्वत ब्रह्म की अखण्ड सत्ता का प्रतिपादन किया गया है। इस सनातन ब्रह्म के अस्तित्व को जानने के बाद कोई किसी से घृणा-द्वेष नहीं करता है। वह सबसे प्रेम करने लगता है।

अध्यात्ममार्ग के पथिक आध्यात्मिक साधना से परमात्मा से तादात्म्य स्थापित कर सर्वत्र आत्मदृष्टि रखते हैं। वे किसी से भी राग-द्वेष न कर, सबसे प्रेम करते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि यदि हम द्वेष करेंगे, तो अपने से करेंगे, प्रेम करेंगे, तो अपने से ही करेंगे, क्योंकि सर्वत्र सबमें आत्मतत्त्व है, जो मेरा स्वरूप है, एक प्रकार से मैं ही सब हूँ, सबमें मैं ही हूँ। किसी साधक ने बड़े मार्मिक ढंग से गाया है –

किससे जग में द्वेष करूँ, जहँ देखूँ मेरो साँवरो है।
सबमें देख के उसको ही, मन मेरो भयो बावरो है ।।

श्वेताश्वतरोपनिषद (अध्याय ४ मन्त्र २) सृष्टि के कण-कण में उसी परमात्म सत्ता का ही प्रतिपादन करता है –

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदापस्तत् प्रजापतिः ।।

– वह परम ब्रह्म ही अग्नि, जल, सूर्य, वायु, चन्द्रमा, अन्य प्रकाशमय नक्षत्र और आदि प्रजापति ब्रह्मा है। संसार की सभी वस्तुएँ पंचभौतिक पदार्थों से निर्मित हैं और वह पंचतत्त्व परमात्मा स्वयं ही हैं। सभी प्राणियों की तात्त्विक एकता का प्रतिपादन करते हुए अथर्ववेद (काण्ड १०, सूक्त ८, २७ वाँ मन्त्र) में वेद के ऋषि यह उद्घोषणा करते हैं –

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ।।

– हे प्रभो ! तुम्हीं स्त्री और तुम्हीं पुरुष हो। तुम्हीं कुमार और तुम्हीं कुमारी हो। तुम्हीं वृद्ध बनकर लाठी की सहायता से चलते हो। तुम्हीं विराट रूप में प्रकट होकर सम्पूर्ण विश्व की ओर मुख किए हुए हो।

'जीवो ब्रह्मैव नापर:' – जीव ब्रह्म ही है, इससे भिन्न नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं जीव-ब्रह्म की एकता और सर्वत्र सबमें परमेश्वर की व्यापकता सिद्ध है। अत: सबसे आत्मीयता, अपनत्व स्वभावसिद्ध है। सबमें आत्मवत्, अपनत्व दृष्टि हमारा सच्चा मौलिक दर्शन है। अत: किसी कारणवशात् आच्छन्न हो गए, इस दृष्टि, भावना का हम मानवता लिए अनन्त विस्तार करें और सबके लिए अपने हृदय सिंहासन को उन्मुक्त कर दें।

माँ सारदा देवी एक भक्त-महिला को शान्ति-मन्त्र देती हैं – "यदि शान्ति चाहती हो बेटी, तो किसी का दोष मत देखना, दोष केवल अपना ही देखना, जगत को अपनाना सीखो, कोई पराया नहीं है, संसार तुम्हारा है।"

बौद्धिक रूप से इस धारणा के दृढ़ होने के बाद, यदि हम अपने आचरण में लाने का थोड़ा-सा भी प्रयास करेंगे कि सभी मेरे ही हैं, तो परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व में सद्भावना, सौहार्दता और सामंजस्यता आ जाएगी। परिवार, समाज में व्याप्त विषमता, स्वार्थपरता, वैमनस्यता, असहिष्णुता नष्ट हो जाएगी और उसके स्थान पर एकता, आत्मीयता, सौहार्दता, समरसता का भाव व्याप्त हो जाएगा। समाज में सुख, समृद्धि और शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो जाएगा। राम-राज्य की अवधारणा साकार होगी। देश की सम्पूर्ण ऊर्जा और शक्ति विश्व के कल्याण में सार्थक होगी। मानव-जीवन की धन्यता का बोध होगा। समाज सहज रूप से अपने मूलस्वरूपजनित आनन्द-बोध की ओर अग्रसर होगा। अपने स्वरूप का यथार्थ बोध कर संसारातीत परमानन्द, परमसुख, परमशान्ति में स्थायी रूप से प्रतिष्ठित हो जाएगा। ○○○

विवेक वाणी

ईसा का सन्देश

स्वामी विवेकानन्द

आज हम ईसा की जीवनी में सम्पूर्ण अतीत का इतिहास देखते हैं। वैसे तो हर सामान्य मानव का जीवन भी उसके अतीत भावसमूह का इतिहास ही है। समूची जाति का यह अतीत भावसमूह प्रत्येक व्यक्ति में आनुवंशिकता, वातावरण, शिक्षा एवं पूर्व जन्म के संस्कारों द्वारा आता ही रहता है। एक प्रकार से इस पृथ्वी का, सम्पूर्ण विश्व का अतीत हर जीवात्मा पर अंकित है। हमारा आज का वर्तमान रूप उस अनन्त अतीत के एक कार्य और फल के अतिरिक्त और क्या है ? अनन्त घटना प्रवाह में अनिवार्यतया अविराम रूप से अग्रसर होनेवाली, स्थिर रहने में असमर्थ छोटी-छोटी उर्मियों के अतिरिक्त हम और क्या है? किन्तु मैं और तुम केवल क्षुद्र वस्तुएँ, बुलबुले मात्र हैं। विश्व-व्यापार के महासागर में कुछ विशाल तरंगे रहती ही है। मेरे और तुम्हारे जैसे क्षुद्र जनों में जाति के अतीत जीवन का अत्यल्प अंश ही व्यक्त होता है। किन्तु ऐसे शक्ति सम्पन्न महापुरुष भी होते हैं, जो प्राय: सम्पूर्ण अतीत के साकार रूप होते हैं, और जो मानो अपनी दीर्घ प्रसारित बाहुओं से सूदुर भविष्य की सीमाओं को भी स्पर्श करते रहते हैं। ये महापुरुष मानव जाति के उन्नति-पथ पर यत्र-तत्र स्थापित मार्ग-दर्शक स्तम्भों के सामान हैं । वे सचमुच इतने महान हैं कि उनकी छाया मानो समस्त पृथ्वी को आच्छन्न कर लेती है; वे अमर, अनन्त और अविनाशी हैं। इसी महापुरुष ने कहा है, 'किसी भी व्यक्ति ने ईश्वर-पुत्र के माध्यम के बिना ईश्वर का साक्षात्कार नहीं किया है।' और यह कथन अक्षरश: सत्य है। ईश्वर-पुत्र के अतिरिक्त हम ईश्वर को और कहाँ देखेंगे? यह सच है कि मुझमें और तुममें, हममें से निर्धन से भी निर्धन और हीन से भी हीन व्यक्ति में भी परमेश्वर विद्यमान है, उसका प्रतिबिम्ब मौजूद है। प्रकाश की गति सर्वत्र है, उसका स्पन्दन सर्वव्यापी है, किन्तु उसे देखने के लिए दीप जलाने की आवश्यकता होती है। जगत् का सर्वव्यापी ईश भी तब तक दृष्टिगोचर नहीं होता, जब तक ये महान शक्तिशाली दीपक, ये ईशदूत, ये उसके सन्देश वाहक और अवतार, ये नर-नारायण उसे अपने में प्रतिबिम्बित नहीं करते।

ईश्वर का यह दूत, मार्ग प्रदर्शित करने के लिए अवतीर्ण हुआ था, वे हमें बताने आये थे कि आत्मा बाह्याचार में नहीं है, गूढ़ दार्शनिक तर्क-वितर्कों से आत्मतत्त्व की उपलब्धि नहीं होती। अच्छा होता यदि तुम कोई पुस्तक न पढ़ते, अच्छा होता यदि तुम विद्याहीन होते। मुक्ति के लिये इन उपकरणों की आवश्यकता नहीं है, उसके लिए धन, ऐश्वर्य और उच्च पद की जरूरत नहीं, यहाँ तक कि पाण्डित्य की भी आवश्यकता नहीं। उसके लिए केवल एक वस्तु की आवश्यकता है – और वह है पवित्रता। 'पवित्र हृदय पुरुष धन्य हैं', क्योंकि आत्मा स्वयं पवित्र है, वह अन्यथा अर्थात् अपवित्र हो भी कैसे सकती है? ईश्वर से ही उसका आविर्भाव हुआ है, वह ईश्वर-प्रसूत है। बाइबिल के शब्दों में वह 'ईश्वर का नि:श्वास है।' क़ुरान की भाषा में 'वह ईश्वर की आत्मास्वरूप है।' क्या तुम कहना चाहते हो कि ईश्वरात्मा कभी अपवित्र हो सकती है? किन्तु दुर्भाग्य से हमारे शुभाशुभ कार्यों के कारण वह मानों सदियों की मैल, सैकड़ों वर्षों की अशुद्धि और धूलि से आवृत है; हमारे नानाविध दुष्कर्म, नानाविध अन्याय कार्य शत-शत वर्षों से अज्ञानरूपी धूलि और मलिनता द्वारा उसके प्रकाश को मन्द कर रहे हैं। केवल इस धूलि और मैल की तह का उस पर से पोंछने भर की देर है कि आत्मा पुन: अपनी उज्ज्वल एवं दिव्य प्रभा से प्रकाशित हो जायगी। 'पवित्रहृदय व्यक्ति धन्य हैं, क्योंकि वे ईश दर्शन करेंगे।' 'महान स्वर्ग-राज्य तुम्हारे ही अन्तर में विराजमान है।' और इसीलिये नाजरथ का यह महान् पैगम्बर पूछता है, 'जब स्वर्ग तुम्हारे अन्तर में विराजमान है, तो उसे ढूँढ़ने अन्यत्र कहाँ जा रहे हो? अपनी आत्मा को माँज धोकर स्वच्छ करो, और वह तत्काल मिल जायगा। वह तो पहले से ही तुम्हारा है। यदि वह तुम्हारा न होता, तो तुम कैसे पा सकते? तुम उसके अधिकारी हो। तुम अमरता के उत्तराधिकारी हो, तुम उस नित्य, सनातन पिता की सन्तान हो।

यह है उस महान सन्देश-वाहक की महान् शिक्षा। उसकी दूसरी शिक्षा है त्याग – जो प्राय: सभी धर्मों का आधार है। आत्मशुद्धि कैसे प्राप्त की जा सकती है ? – त्याग द्वारा। एक धनी युवक ने एक बार ईसा से पूछा, 'प्रभो, अनन्त जीवन की प्राप्ति के लिए मैं क्या करूँ?'' ईसा बोले, 'तुझमें एक बड़ी कमी है। जाकर अपनी सारी सम्पत्ति बेच डाल। जो धन प्राप्त हो, उसे गरीबों को दे दे। तुझे स्वर्ग में अक्षय धन-सम्पदा प्राप्त होगी। उसके बाद

(शेष भाग ५९८ पृष्ठ पर)

धर्म-जीवन का रहस्य (८/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. में विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में पण्डितजी के 'धर्म' विषयक प्रवचन को 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी और सम्पादन 'विवेक-ज्योति' के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

औरंगजेब के सन्दर्भ में एक प्रसिद्ध कविता है। वह बादशाह उदार नहीं था, कृपण स्वभाव का था, देता नहीं था। एक कवि ने सोचा कि सभा में कविता सुनाएँगे, तो संकोच से इन्हें देना ही पड़ेगा। उसने कविता सुना दी, तो औरंगजेब ने तत्काल कहा – इस कविता के बदले में इन्हें हाथी दिया जाय। तहलका मच गया। अरे, इतनी उदारता ! एक कविता के बदले में हाथी दिया गया ! कवि भी प्रसन्न होकर, जहाँ हाथी बँधे हुए थे वहाँ गया। जो सबसे बूढ़ा चलने में असमर्थ हाथी था, उसी को दान में देने की सूचना दे दी गई थी, वही हाथी इनको दे दिया गया। हाथी को देखते ही कवि समझ गया। उससे नहीं रहा गया। उसने लौटकर एक व्यंग्यात्मक कविता लिखी – वाह, आपने हाथी ही नहीं दिया, ऐसा हाथी दे दिया कि जिसका इतिहास बड़ा पुराना है। इस हाथी को तैमूर लंग ने मोल लिया और बाबर ने इसका उपयोग किया। अकबर ने उसे काम से छुट्टी दे दी थी। आपने कविराज को ऐसा हाथी दे दिया, आप कितने उदार हैं –

तैमुरलंग लई मोल, चली बाबर के हलके ।।

ऐसे हाथी पर आदमी चढ़ेगा कि हाथी ही आदमी के सिर पर चढ़ेगा? ऐसा हाथी तो बोझ ही बन जाता है। वैसे ही करमचन्द ने हमें जो शरीर दिया, वह यदि हमें ढोता, तो कोई सार्थकता थी। मगर करमचन्द ने शरीर भी ऐसा दिया, जो हमें ही ढोना पड़ रहा है। गोस्वामीजी बोले – भाई, यह तो कुटिल करमचन्द का दान है।

जो वस्तुएँ किसी को प्रयत्न से मिल सकती हैं, वे वहाँ तक तो उपयोगी हैं, जहाँ तक उनसे व्यक्ति में ईर्ष्या की वृत्ति कुछ घटे और सत्कर्म करने की प्रेरणा हो। किन्तु दुर्भाग्यवश यदि ऐसा हो कि जिसके पास है, वह बड़े गर्व से कहने लगे कि मैं सुन्दर हूँ, तो मैंने पहले सत्कर्म किया होगा। मेरे पास यदि अधिक बुद्धि है, तो मैं पुण्यात्मा रहा होऊँगा। ऐसी मान्यता उसके जीवन में अभिमान को ही बढ़ाएगी। उसका परिणाम यह होगा कि वह दूसरे दुखी व्यक्ति को देखकर कह सकता है कि इसने जैसा कर्म किया वैसा भोग रहा है, इसमें क्या किया जा सकता है। ऐसे कहने वाले भी हैं – यदि वह दुखी है, तो मैं क्या कर सकता हूँ, वह अपने कर्मों का फल भोग रहा है।

यदि व्यक्ति को कर्म के द्वारा प्राप्त वस्तु के प्रति अभिमान हो जाय और वह संसार की उपेक्षा करने लगे, तो यह सिद्धान्त बड़ा घातक हो जाएगा। यह सिद्धान्त वस्तुत: किसके लिए है और किसके लिए नहीं है, यह विवेक ही महत्त्वपूर्ण है। इस विवाद में नहीं पड़ना चाहिए कि सच क्या है। कई लोग इसी प्रश्न को लेकर उलझ जाते हैं कि सच क्या है – शास्त्र में कहीं यह लिखा है, तो कहीं वह लिखा है, कहीं-कहीं तो वे बातें परस्पर विरोधी भी प्रतीत होती हैं, अब किसे सही माने? इसका उत्तर यह है कि क्या सही है, इसके विवाद में पड़ने के स्थान पर, यदि हम यह समझ सकें कि मेरे लिए क्या मानना सही है, तो हमारी बहुत बड़ी उलझन दूर हो सकती है।

यदि आप दवाखाने में जाकर दवाइयों को देखें, तो वहाँ बहुत-सी दवाइयाँ रखी रहती हैं और हर दवा के साथ परचे पर उसके गुण लिखे रहते हैं। यदि हम वहाँ जाकर यही पूछने लगे कि बताइए आपकी दुकान में सबसे अच्छी दवा कौन-सी है? तो यह तो कोई बुद्धिमानी का प्रश्न नहीं है। प्रश्न सबसे अच्छी दवा का नहीं है, बल्कि यह कि आपको रोग क्या है? आपके लिए कौन-सी दवा उपयुक्त होगी। वह कितने रुपये की है, इसके द्वारा उसकी लाभदायिकता नहीं निर्धारित होगी। यदि कोई सस्ती दवा भी आपके लिए उपयोगी है, तो वही आपके लिए सबसे अच्छी दवा है। बहुत मूल्यवान दवा भी यदि आपके शरीर और प्रकृति के अनुरूप नहीं है, तो आपके लिए उपयोगी नहीं होगी। इस सूत्र का अर्थ यह है कि कभी-कभी किसी व्यक्ति को जिसे औषधि मानना चाहिए, उसके स्थान पर वह उस वाक्य को

दुहराता है, जो उसके लिए नहीं होता। इसका परिणाम यह होता है कि वह दुहाई तो शास्त्र की देता है, परन्तु वह उसके लिए नहीं होता। वह दूसरों के लिए होता है।

ये सिद्धान्त हैं और इन सिद्धान्तों के समुचित सदुपयोग का प्रसंग चल रहा है। इस प्रसंग में एक दिन प्रश्न किया गया था कि महाराज दशरथ ने जिसे 'सत्य' माना, कैकेयी ने जिसे 'सत्य' कहा, मन्थरा ने भी जिसके लिए 'सत्य' शब्द का ही प्रयोग किया और भगवान राम भी उसे 'सत्य' मानकर ही तो उस 'सत्य' की रक्षा के लिये वन में चले गए। परन्तु श्रीभरत ने 'सत्य' की वह व्याख्या स्वीकार नहीं की।

गुरु वशिष्ठ ने भरत से प्रारम्भ में कहा था – भरत, तुम विचार करके देखो, तुम्हारे पिता कितने महान थे और उनके इस वाक्य को स्वयं राम ने कितना महत्त्व दिया। तुम ऐसे महान पिता के पुत्र हो, वैसे ही सर्वश्रेष्ठ पुरुष के भाई भी हो। क्या तुम्हारा कुछ कर्तव्य नहीं बनता? एक भाग को उन्होंने पूरा कर दिया, तो दूसरे भाग को तुम्हें पूरा करना चाहिए। वन जाना है, इसे श्रीराम ने स्वीकार कर लिया। सत्य की रक्षा करने के लिए दशरथजी ने उन्हें वन जाने की आज्ञा दी थी। अब उस सत्य का दूसरा भाग यह है कि भरत राज्य करे। ऐसी स्थिति में जब तुम राजसिंहासन पर बैठोगे, तभी तो पिता के सत्य की रक्षा होगी। जिस सत्य की रक्षा के लिए श्रीराम ने जो त्याग किया है, इसी से तो उसकी रक्षा होगी।

भरतजी ने इस व्याख्या को स्वीकार नहीं किया और यही धर्म की व्याख्या का सर्वश्रेष्ठ सूत्र है। गुरु वशिष्ठ के भाषण को सुनकर जब भरतजी बोलने के लिए खड़े हुए, तो उन्होंने यहीं से शुरू किया – गुरु, पिता-माता की वाणी को तो बिना विचार किए ही मान लेना चाहिए –

गुर पितु मातु स्वामि हित बानी ।
सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी ।। २/१७७/३

उनका यह वाक्य सुनते ही लोगों ने समझा कि राज्य स्वीकार करने की भूमिका बन रही है। जब किसी को कोई पद दिया जाता है, तो लोग प्रारम्भ में इतना दिखावा तो करते ही हैं कि मैं इस पद के योग्य नहीं हूँ, इच्छा भी नहीं थी, परन्तु मैं आप गुरुजनों का आग्रह कैसे टालूँ, इसलिए स्वीकार किए ले रहा हूँ। लोगों ने सोचा कि भरत भी शायद यही करने जा रहे हैं। परन्तु भरतजी का यह पहला वाक्य और बाद में जब उन्होंने जो कुछ कहा, वह बड़ा विलक्षण था। बड़ा विस्तृत प्रसंग है।

उन्होंने कहा – गुरुदेव, आप तो वैद्य हैं। गुरु ही वैद्य हैं और वे ही दवा देते हैं। पर उस दवा का परिणाम क्या हुआ, इसका अनुभव तो वैद्य नहीं, रोगी करता है। आपने जो दवा दी है, उससे मुझे तो कोई लाभ होता हुआ दिखाई नहीं दे रहा है। उन्होंने आगे कहा – आपकी जो व्याख्या है, वह ठीक तो है, परन्तु मुझे तो शान्ति नहीं मिल रही है। मुझे तो उसमें असन्तोष हो रहा है –

जद्यपि यह समुझत हउँ नीकें ।
तदपि होत परितोष न जी कें ।। २/१७७/६

यही सर्वश्रेष्ठ सूत्र था। सूत्र क्या था? क्या उन्होंने राज्य को स्वीकार नहीं किया? वस्तुतः भगवान राम और श्रीभरत ने दोनों ने धर्म का पालन किया। धर्म के सच्चे अर्थ को उन दोनों ने पूर्णता प्रदान की। कैसे? भरतजी का संकेत था कि मन्थरा का जो 'सत्य' था, वस्तुतः वह तो सत्य था ही नहीं। वह तो सत्य का कपट-वेश बना कर असत्य को प्रस्तुत किया गया था। महारानी कैकेयी का 'सत्य' तो केवल स्वार्थ मात्र था। पिताजी का 'सत्य' तो अनिर्णय का सत्य था। मन्थरा सत्य की दुहाई तो देती है, परन्तु वह जानती है कि मैं सत्य में झूठ मिलाकर उसे सत्य का रूप दे रही हूँ। वह कहती है – यदि मैं कुछ भी असत्य कहूँगी, तो ब्रह्मा मुझे अवश्य सजा देगा –

जौं असत्य कछु कहब बनाई ।
तौ बिधि देइहि हमहि सजाई ।। २/१८/५

यह उसकी लाचारी थी। जब भी कोई बाजार में नकली सिक्का ले जाएगा, तो यह थोड़े ही कहेगा कि यह नकली है और इसके बदले मुझे असली सिक्के के बराबर का सामान दीजिए। वह जानता है कि नकली सिक्का भी चलेगा, तो असली के नाम पर ही चलेगा। असत्यवादी भी अपनी वाणी को सत्य का नाम देकर ही चलाता है। यही मन्थरा ने किया। फिर कोई-कोई व्यक्ति सत्य को केवल अपने स्वार्थ के लिये प्रयोग करता है, जैसा कैकेयी ने किया। महाराज दशराथ ने उनसे पूछा – राम को तो सारा संसार साधु कहता है, तुम उसे वनवास क्यों दे रही हो –

सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू ।। २/३२/६

कैकेयी बोली – आपके समझने में भूल हुई है। यदि मैंने आपसे यह माँगा होता कि राम को कारागार में डाल दीजिए, तब तो इसका अर्थ होता कि मैं उसे दण्ड देना चाहती हूँ। यदि मैं कहती कि उसे प्राणदण्ड दे दीजिए, तो

आप समझ सकते थे कि मेरे हृदय में तो राम के प्रति बड़ी शत्रुता की भावना है। परन्तु जब मैं यह कह रही हूँ कि राम को चौदह वर्ष तक वन में तपस्या करनी चाहिये, तो मेरा कार्य तो पूरी तौर से धर्म के अनुकूल है। आप स्वयं ही कहते हैं कि राम साधु हैं। तो साधु को वन में रहकर तपस्या करनी चाहिए या फिर सिंहासन पर बैठकर तपस्या करनी चाहिए? साधु को तो मैंने वही कार्य दिया है, जो साधु का कर्तव्य है। इसलिए इसमें मैंने क्या अन्याय किया? यह बात आप क्यों नहीं समझ पाते?

बात तो बिल्कुल युक्तिसंगत है। कैकेयी यही कहना चाहती हैं कि क्या भोग और त्याग – इन दोनों में त्याग श्रेष्ठ नहीं है? तप श्रेष्ठ नहीं है? सुनने में तो कैकेयी की बातें ठीक ही लग रही हैं। शास्त्रों ने तो त्याग और तप को ही श्रेष्ठ बताया है। कैकेयी का तात्पर्य यह है कि यदि मैं राम को त्याग-तपस्या के लिए प्रेरित कर रही हूँ, तो इससे बढ़कर कोई धर्म हो ही नहीं सकता। जहाँ तक युक्ति और तर्क की बात है, यह बिल्कुल ठीक है।

परन्तु इसका उत्तर भरतजी ने दिया। उनका उत्तर यही था कि वे चित्रकूट से लौटकर भी आए और श्रीराम की आज्ञा से राज्य भी चलाया, परन्तु अयोध्या के राज-सिंहासन पर नहीं बैठे। वे नन्दीग्राम में कुटिया बनाकर तपस्या करते हुए मुनिवेश में रहने लगे। किसी ने कहा – महाराज, पिताजी ने तो आपको यह आज्ञा नहीं दी थी कि तपस्वी और मुनिवेश में रहना है, श्रीराम ने भी यह नहीं कहा, किन्तु जब आप राज्य चला रहे हैं, तो आप ऐसा क्यों कर रहे हैं? भरतजी ने उत्तर दिया – मैंने सुना है कि महारानी कैकेयी की यह मान्यता है कि भोग की अपेक्षा तपस्या ही श्रेष्ठ है, गृहस्थ से साधु ही श्रेष्ठ है, तो महारानी की प्रसन्नता के लिए श्रीराम को तपस्या के लिए वनवास दिया गया है, तो मैं सोचता हूँ कि मैं भी इसी वेश में रहूँगा, तो शायद महारानी को बड़ी प्रसन्नता होगी कि उनका बेटा भी तपस्वी है, उनका बेटा भी साधु है।

इसमें व्यंग्य यही था कि दूसरे के बेटे को धर्म का पालन करने हेतु तपस्वी बनने का उपदेश दिया जा रहा है और अपने बेटे को सिंहासन पर बैठाने का षड्यंत्र किया जा रहा है। धर्म और सत्य का क्या यही उद्देश्य है कि वह स्वार्थी के स्वार्थ के लिए ढाल बन जाय? यहाँ व्यंग्य मानो यह था कि यदि तपस्या श्रेष्ठ है, तो अपने पुत्र के लिये भी उसी को श्रेष्ठ मानना चाहिए, उसके तपस्वी होने पर प्रसन्नता होनी चाहिये। यहाँ मानो सत्य की आड़ में शुद्ध स्वार्थ छिपा हुआ था। बँटवारा करते हुए उन्होंने महाराज दशरथ से कहा – महाराज, आज आपके लिये कितना अच्छा सुअवसर है – आपको धर्म के चारों चरणों को पूर्ण करने का अवसर मिला है।

सत्य, तप, दया और दान, ये ही धर्म के चार चरण हैं। 'सत्य' की रक्षा आप कीजिए। आप राम को वनवास देंगे, तो लोग समझेंगे कि सत्य के लिए कितना बड़ा त्याग करना चाहिए। धर्म का दूसरा चरण 'तप' है। राम वन में जाकर सिद्ध करें कि तप कितनी महान वस्तु है। मैं आपकी प्रिया हूँ। अब आप मेरे ऊपर 'दया' नहीं करेंगे, तो कैसे सिद्ध होगा कि आपमें दयालुता है। तो मैं तो आपकी 'दया' की पात्र हूँ ही। इसके बाद जब आप भरत को राज्य का 'दान' दे देंगे, तो इस प्रकार अयोध्या में धर्म के चारों चरण पूरे हो जाएँगे।

आज भी हम लोग सत्य, तप, दया और दान – धर्म के इन चारों चरणों को पूरा कर रहे हैं। हम सब लोग इसकी पूर्णता के लिए व्यग्र हैं, परन्तु बँटवारा हम लोग वैसे ही करना चाहते हैं, जैसा कि कैकयी ने किया। धर्म के चार चरणों में से दो चरण दूसरों के लिए और दो अपने लिए – 'सत्य' तथा 'तप' दूसरे करें और 'दया' तथा 'दान' मुझे मिलें। यही हमारा बँटवारा है। इस प्रकार धर्म यदि स्वार्थ के समर्थन के लिए युक्ति बन जाय, तब तो वह सही धर्म नहीं हुआ। भरतजी बोले – जहाँ तक महाराज दशरथ का सवाल है, यदि वे हृदय से इसे धर्म मानते होते, तो वे अपने को जीवित रख सकते थे कि मेरी एक आज्ञा की तो पूर्ति हो गई और अब मैं भरत को भी राजसिंहासन पर बैठा दूँ, तो मेरे दोनों सत्य पूरे हो जायँ, परन्तु वे मौन रहे और मेरे आने के पहले ही उन्होंने देहत्याग कर दिया। इसका अर्थ है कि वे एक ऐसी स्थिति में डाल दिए गये थे कि वे कुछ निर्णय नहीं कर पा रहे थे, कुछ कह नहीं पा रहे थे। लेकिन उनको इतनी ग्लानि थी कि अन्ततः उन्होंने शायद मेरा मुख तक देखना पसन्द नहीं किया और मेरे आने के पूर्व ही प्राणों का परित्याग कर दिया। तो क्या यही 'सत्य' था? **(क्रमशः)**
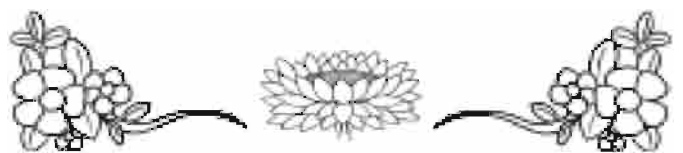
गुरु घासीदास का जीवन और सन्देश

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

अध्यक्ष, छत्तीसगढ़ निजी विश्वविद्यालय विनियामक आयोग

छत्तसीगढ़ के सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक चेतना के विकास में गुरु घासीदासजी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। एक ऐसे समय में घासीदास जी का जन्म हुआ था, जब छत्तीसगढ़ का समाज दिशाहीनता का शिकार हो गया था। छत्तीसगढ़ की सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक स्थिति अस्त-व्यस्त हो गई थी। नैतिक मूल्यों का विघटन हो रहा था। समाज में जाति-पांति और छुआछूत की भावना बहुत अधिक बढ़ गयी थी। समाज के लोग मानसिक रूप से अत्यन्त दुर्बल हो गये थे। न्याय पाने के लिए संघर्ष करने की शक्ति पूर्णत: समाप्त हो गई थी। समाज में न्याय की व्यवस्था ही नहीं रह गई थी। छुआछूत का प्रभाव इतना अधिक था कि दण्ड का निर्धारण भी जाति के वर्गीकरण के आधार पर किया जाता था। यदि कोई उच्च वर्ण का व्यक्ति, किसी निम्न वर्ग के व्यक्ति की हत्या कर देता, तो उसे केवल कुछ जुर्माना भरना पड़ता था, पर यदि कोई निम्न वर्ण का व्यक्ति किसी उच्च वर्ण के व्यक्ति की हत्या कर देता, तो उसे सबके सामने फाँसी दे दी जाती। समाज में बाह्य आडम्बर, कर्मकाण्ड और अन्धविश्वास पूर्ण रूप से फैल गया था। धर्म का यथार्थ स्वरूप समाज के लोग भूल चुके थे और अन्धविश्वास और कर्मकाण्ड को ही धर्म का वास्तविक स्वरूप समझ रहे थे। सर्वत्र अज्ञान और अशान्ति का वातावरण फैल गया था। तामसिकता प्रबल हो गई थी। ऐसी विपन्नावस्था में गिरे हुए छत्तीसगढ़ में ज्ञान का प्रकाश बिखेरते हुए गुरु घासीदास जी का आगमन हुआ।

गुरु घासीदास जी ने आकर अपने व्यक्तित्व और कृतित्त्व के द्वारा समाज की समस्याओं का समाधान किया। जब हम उनके जीवन पर विचार करते हैं, तब उनके जीवन में अद्‌भुत विलक्षणता पाते हैं। अनेक अर्थों में उनका जीवन विलक्षण था। वे निरक्षर थे। धर्मग्रन्थों का उन्होंने अध्ययन नहीं किया था, किन्तु छत्तीसगढ़ की आध्यात्मिक आकाश-गंगा में वे सूर्य के समान चमकते रहे। उनका जीवन इसलिए भी विलक्षण रहा कि वे गरीब थे, उनके पास कोई धन नहीं था, परन्तु उनके पास ऐसी आध्यात्मिक सम्पदा थी, जिसके प्रभाव से आकर्षित होकर एक बृहत्तर जन-समुदाय उनके चारों ओर मँडराया करता था। वे छत्तीसगढ़ की पुण्य-धरा में जन्में, पले-बढ़े एक ऐसे महापुरुष थे, जिन्होंने सत्य के संधान के लिए युग के प्रयोजन के अनुरूप एक नया पथ प्रदर्शित किया। वे जीवन भर कठिनाइयों और संघर्षों से जूझते रहे। अपने जीवन में कभी पराजय स्वीकार नहीं किया। वे सत्य के पथ पर सदा बढ़ते रहे और समाज को एक अच्छा जीवन जीने के लिए प्रेरित किया। लोगों में आध्यात्मिक चेतना के विकास हेतु उन्होंने सतनाम पन्थ की स्थापना की।

आप सभी जानते हैं कि गुरु घासीदास जी का जन्म रायपुर जिले के गिरौदपुरी ग्राम में १८ दिसम्बर, १७५६ में हुआ था। वह स्थान जहाँ उनका जन्म हुआ, आज बहुत बड़ा तीर्थ क्षेत्र बन गया है। वे पढ़े-लिखे नहीं थे, किन्तु बचपन से ही चिन्तक प्रवृत्ति के थे। ऐसे कहा जाता है कि वे अपने भाइयों के साथ तीर्थ-यात्रा के लिए जा रहे थे, तभी मार्ग में सोनाखान के जंगलों में उन्हें सत्य का साक्षात्कार हो गया। वे चिन्तन तो करते ही थे, सत्य के संधान की प्रवृत्ति तो उनमें थी ही। सोनाखान की पहाड़ियों में एक तेन्दू के वृक्ष के नीचे उन्हें सत्य ज्ञान की उपलब्धि हुई। भगवान बुद्ध को भी ऐसे ही सत्य का साक्षात्कार हुआ था, जब उन्हें सत्य का साक्षात्कार हुआ, तो उनके जीवन की गुत्थियाँ सुझल गईं, ज्ञान के प्रकाश से उनका जीवन आलोकित हो गया। मुण्डक उपनिषद में कहा गया है कि जब व्यक्ति को सत्य का साक्षात्कार होता है, तब उसकी स्थिति कैसी हो जाती है? –

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।। २/८

– हृदय की ग्रन्थि का भेदन हो जाता है, सभी प्रकार के संशय दूर हो जाते हैं। सभी कर्मों का क्षय हो जाता है। ऐसा व्यक्ति सदा आनन्द के सागर में डूबा रहता है।

गुरु घासीदास की अवस्था भी ऐसी ही हो गई। किन्तु गुरु घासीदास केवल आत्मानन्द में ही डूबे रहनेवाले व्यक्ति नहीं थे। उनके जीवन का एक और महत्तर प्रयोजन था। एक बार नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) से रामकृष्ण

परमहंस ने पूछा – बेटा, तू क्या चाहता है? तब नरेन्द्र ने कहा था – "महाराज मैं चाहता हूँ कि निरन्तर समाधि में डूबा रहूँ। शरीर की मुझे कोई सुधि न रहे। श्रीरामकृष्ण को खुश होना चाहिए था कि कैसा योग्य शिष्य मिला है, जो धन-सम्पत्ति की कामना नहीं कर रहा है, राज-सुख की कामना नहीं कर रहा है, पत्नी-पुत्र की कामना नहीं कर रहा है। सदैव ईश्वर के आनन्द में डूबा रहना चाहता है। यही समाधि की अवस्था आध्यात्मिक जीवन का परम प्राप्तव्य है। परन्तु श्रीरामकृष्ण देव प्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने नरेन्द्रनाथ को धिक्कारते हुए कहा – "अरे बेटा, मैं तो समझा था कि तू विशाल वट-वृक्ष की भाँति होगा जिसके छाया तले बहुत से लोग विश्रान्ति का अनुभव करेंगे, किन्तु मैं देख रहा हूँ कि तू बहुत स्वार्थी हो गया है। तू अपनी ही मुक्ति के पीछे पड़ा हुआ है। अरे बेटा। इससे भी ऊँची अवस्था होती है।" बाद में श्रीरामकृष्ण देव ने बता दिया कि वह ऊँची अवस्था है – 'शिवभाव से जीवसेवा'। अर्थात् अभावग्रस्त लोगों को ईश्वर मानकर सेवा करना।

गुरु घासीदास जी को भी अपने जीवन का प्रयोजन स्पष्ट हो गया था। उन्हें लगा कि अब उन्हें समाधि के आनन्द में नहीं डूबना है। समाज की सेवा करनी है। वे समाज की सेवा में लग गए। वे तत्कालीन समाज में फैली कुरीतियों को दूर करने लगे। उन्होंने छत्तीसगढ़ के विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया। वे दन्तेवाड़ा गए। दन्तेवाड़ा में उन दिनों नर-बलि की प्रथा थी। नर-बलि की प्रथा को उन्होंने जघन्य अपराध सिद्ध किया और लोगों के जीवन में सत्य-धर्म की प्रतिष्ठा की। इस सत्य धर्म के आधार पर सतनाम पन्थ की स्थापना की। उन्होंने बताया कि सत्य धर्म का आश्रय लेकर प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में शान्ति और सत्य की उपलब्धि कर सकता है। ढोंग और ढकोसले से उन्हें बहुत पीड़ा होती थी। वे हृदय की पवित्रता में विश्वास करते थे। उन्होंने नर-बलि और पशु-बलि की प्रथा को भी बन्द किया। समस्त पशु-जगत के प्रति गुरु घासीदास जी के हृदय में बहुत दया का भाव था। विशेष रूप से बैलों के प्रति उनके मन में बहुत प्यार था। क्योंकि बैल कृषकीय जीवन के प्रमुख आधार थे। न केवल मनुष्य, न केवल पशु; समस्त जीव-जगत के प्रति गुरु घासीदास के मन में बड़ा आदर का भाव था। अँवरा और धँवरा के प्रतीक के माध्यम से उन्होंने वृक्षों की रक्षा का महाभियान प्रारम्भ किया था। आज हम वृक्षों को बचाने की बात कर रहे हैं। आज के पर्यावरणविद् जिस बात को महत्त्वपूर्ण बता रहे हैं, गुरु घासीदास जी ने आज से लगभग ढाई सौ साल पहले, मानो वृक्षों की रक्षा का एक महाभियान प्रारम्भ किया था। सम्पूर्ण जीव-जगत, चर-अचर, जड़-चेतन, सबके प्रति उनके हृदय में बड़ा सम्मान और प्रेम था। भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व का साक्षात्कार उन्होंने अपने हृदय में किया। ज्ञान की उच्च अवस्था में प्रतिष्ठित होकर उन्होंने जो ज्ञान-वारि प्रवाहित की, उसमें अवागाहन कर छत्तीसगढ़ का जन समाज अपने आपको धन्य समझने लगा। शताब्दियों से निरन्तर गरीबी, अशिक्षा और पीड़ा में डूबे हुए लोगों को ऐसा लगा कि उनको भी सब के समान जीने का अधिकार है। गुरु घासीदास जी के सान्निध्य में रहकर उन्हें भी जीवन की सार्थकता का बोध हुआ। बहुत से लोग गुरु घासीदास जी के शिष्य बन गये। उनके जीवन से प्रभावित होकर विभिन्न जातियों के लोग उनके पन्थ में सम्मिलित हुए और मदिरापान, मांसाहार छोड़कर शुद्ध शाकाहरी हो गए। ढकोसला, आडम्बर, अन्धविश्वास, सब उन्होंने त्याग दिया और शुद्ध सात्त्विक जीवन बिताने लगे।

गुरु घासीदासजी ने जीवन में सत्य को अपनाने के लिए और जीवन में धन्यता प्राप्त करने के लिए सात सूत्र बतलाए। ईसा ने ओल्ड टेस्टामेंट में दस सूत्र बताएँ हैं। भगवान बुद्ध ने जीवन में धन्यता प्राप्त करने के लिए आठ सूत्र अर्थात् 'अष्टांग मार्ग' बताया है। घासीदास जी ऐसे महापुरुष हुए जिन्होंने सात सूत्र बताए। ईश्वर है कि नहीं इसके लिए बहुत विवाद में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। जीवन में पालन करने के लिए गुरु घासीदासजी ने सात सामान्य सूत्र बतलाए हैं। इससे जीवन धन्य हो जाएगा। १. सत्य नाम का आश्रय लीजिए, वही ईश्वर का दूसरा नाम है २. मूर्तिपूजा का निषेध ३. मांसाहार न करें ४. मदिरा पान मत कीजिए ५. छुआछूत न मानें ६. परस्त्री को माता के समान समझें और ७. दोपहर के बाद बैलों से खेत मत जोतो, उन्हें विश्राम दो । ये सात दिशा-निर्देश गुरु घासीदास जी ने दिए और इन दिशा-निर्देशों का पालन कर व्यक्ति अपने जीवन में सुख-शान्ति का अनुभव कर सकता है तथा अपने जीवन में सत्य की उपलब्धि कर सकता है।

हमारे उपनिषद में कहा गया है कि आध्यात्मिक जीवन

का मार्ग अत्यधिक कठिन है –

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ।।

कठोपनिषद १/३/१४

यह कठोपनिषद का सुन्दर श्लोक है जिसका अर्थ है – मानव जीवन की पूर्णता का पथ वैसा ही कठिन है, जैसे छुरे की नोक पर चलना। घासीदास जी ने जीवन के इस कठिन मार्ग को बहुत सरल बना दिया है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए उन्होंने सात सूत्रों का सहज मार्ग बतलाया कि इनका यदि आप पालन करेंगे, तो आपके जीवन में शान्ति होगी और सुख आएगा।

गुरु घासीदास समता मूलक समाज की स्थापना पर बल देते थे। ऊँच-नीच के भेदभाव को उन्होंने कभी नहीं माना। हमारे उपनिषदों में तो यह कहा गया है कि एक ही ईश्वर विभिन्न रूपों में प्रकट हो रहा है। श्वेताश्वतर उपनिषद (४/३-४) में दो बड़े सुन्दर श्लोक आते हैं –

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।

त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः।।

नीलः पतङ्गो हरितोलोहिताक्षः तडिद्‌गर्भः ऋतवः समुद्राः ।

अनादिमत्त्वं विभुत्वेन वर्तसे यतो जातानि भुवनानि विश्वा ।।

हे ईश्वर ! तुम्हीं स्त्री हो, तुम्ही पुरुष हो, तुम्ही कुमार अथवा कुमारी हो। तुम्ही वृद्ध होकर लाठी के सहारे चलते हो तथा तुम ही विराट के रूप में प्रकट होकर सब ओर मुखवाले हो जाते हो। तुम्हीं नीले रंग के पतंग हो, हरे रंग के आँख वाले पक्षी हो, तुम्ही वह मेघ हो जिसमें बिजली अपनी चमक बता जाती है, तुम्ही बसन्त आदि ऋतुएँ हो, सप्त समुद्र हो, क्योंकि तुमसे ही सम्पूर्ण लोक उत्पन्न हुए हैं। तुम्ही अनादि प्रवृत्तियों के स्वामी और सर्वत्र सबमें विद्यमान हो ।

ऐसे एकत्व का महाभाव हमारे भारतीय दर्शन में दिया गया है। गुरु घासीदास ने ऊँच-नीच के भाव को त्यागकर समतामूल्य समाज की स्थापना की। उनके सतनाम पन्थ का द्वार उन सभी लोगों के लिए खुला था, जो सतनाम पन्थ में आस्था रखते थे। यही कारण है कि गुरु घासीदास के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर अन्य बहुत-सी जातियों के लोग सतनामी हो गये। ऐसा कहा जाता है कि तेलासी ग्राम में संभवत: सन् १८४२ में एक विराट सम्मेलन हुआ था, जिसमें विभिन्न जाति के लोग सम्मिलित हुए थे। वहाँ केवल पिछड़ी जाति के लोग ही नहीं थे, अपितु अनेक सवर्ण लोग भी थे और उन्होंने भी सतनाम पन्त में प्रवेश लिया। इस प्रकार समानता के आधार पर एक वर्ग-भेदविहीन समाज की पहली बार स्थापना हुई। ऐसा कहा जाता है कि सतनामियों में मिलने वाले सवर्णों के अनेक गोत्रनाम जैसे चतुर्वेदी, पाणीग्राही, कश्यप, भारद्वाज, बघेल आदि उसी के परिणाम हैं। छत्तीसगढ़ के इतिहास में गुरु घासीदास का यह महत्त्वपूर्ण योगदान है कि उन्होंने जातीय विद्वेष को दूर कर एक समतामूलक समाज की स्थापना की। समाज में उन्होंने नारी को पुरुषों के समान अधिकार एवं सम्मान दिया। उन्होंने तत्कालीन युग में प्रचलित वाममार्गीय संस्कृति पर जमकर प्रहार किया, जहाँ मांस-भक्षण, मदिरा-पान और नारी-सेवन का धड़ल्ले से प्रचार था। प्रारम्भ में वाममार्गियों ने उनका विरोध किया, किन्तु वे गुरु घासीदास के आध्यात्मिक तेज से शीघ्र ही पराभूत हो गये। उन्होंने जादु-टोना, धार्मिक कुरीतियों और अन्धविश्वास पर भी जमकर प्रहार किया और लोगों को बताया कि बाबा, तान्त्रिक, बैग, गुनिया ये सब हमारे जीवन की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकते। हमें अपने पुरुषार्थ से अपनी समस्याओं का समाधान करना चाहिए।

इस प्रकार अपने जीवन और सन्देशों से गुरु घासीदास ने अपने युग को एक नयी दिशा दी। वे मानों आधुनिक भारतीय नवजागरण के पुरोधा थे। राजा राममोहन राय को भारतीय नवजागरण का पुरोधा माना जाता है, परन्तु गुरु घासीदास ने राजा राममोहन राय से पहले ही नवजागरण का संदेश दिया। राजा राममोहन राय ने सन् १८२८ में ब्रह्म समाज की स्थापना की, जबकि गुरु घासीदास ने सन् १८२० में ही सतनाम पन्थ स्थापित कर नवजागरण का संदेश दिया। राजा मोहन राय का नवजागरण पाश्चात्य विचारों से प्रभावित था, किन्तु गुरु घासीदास का नवजागरण मूल भारतीय परम्परा से नि:सृत हुआ था। निरक्षर होते हुए भी उन्होंने चरम सत्य की अनुभूति की थी। उनकी अनुभूतियों में वेदान्त तत्त्व का निचोड़ है। उस गहन अनुभूति को छत्तीसगढ़ी भाषा में जन-सामान्य के लिए रखा और इस प्रकार छत्तीसगढ़ी भाषा को मानो देवभाषा का रूप प्रदान किया। गद्य में दिए गए उनके उपदेश अमृत वाणी के नाम से जाने जाते हैं तथा पद्य में दिए गए उपदेश 'पंथीगीत' में निहित हैं। अपना सारा

जीवन सत्यज्ञान की साधना में समर्पित कर वे २० फरवरी, १८५० को महासमाधि में लीन हुए। वे एक सफल क्रान्तिदर्शी, महान समाज-सुधारक, अनुभूतिसम्पन्न तत्त्वदर्शी, गरीबों और दलितों के मसीहा, युगपुरुष और युग प्रणेता थे। ऐसे महामानव को शत-शत प्रणाम !

OOO

(१२ दिसम्बर, २०१४ को विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर में गुरु घासीदास के जन्मोत्सव पर आयोजित कार्यक्रम में दिया गया वक्तव्य, जिसका टेप से अनुलिखन रायपुर के श्री वीरेन्द्र वर्मा और क्षिप्रा वर्मा ने किया है।)

(पृ. ५९१ का शेष भाग)

'क्रूस' धारण कर मेरा अनुगमन कर।'' धनी युवक यह सुनकर अत्यन्त उदास हो गया और दु:खी होकर चला गया, क्योंकि उसके पास विशाल संपत्ति थी ; हम सब न्यूनाधिक अंशों में उसी युवक के समान हैं। रात-दिन हमारे कानों में यही वाणी ध्वनित होती रहती है। हम अपने आनन्द और विषयोपभोग के क्षणों में सोचते हैं कि हम और सब कुछ भूल गये हैं, पर जब कभी क्षण-भर का विराम आता है, तो हमारे कानों में वही ध्वनि गूँजने लगती है, 'अपना सर्वस्व त्याग कर मेरा अनुसरण कर।' 'जो अपनी जीवन-रक्षा का प्रयत्न करेगा, वह उसे खो देगा, और जो मेरे लिए अपना जीवन खोयेगा, वह उसे पा लेगा।' जो भी अपना जीवन उन्हें समर्पित कर देगा, वही अमृतत्व लाभ करेगा, उसे ही अमरता वरण करेगी। हमारी समस्त दुर्बलता के बीच, एक क्षण का विराम आ उपस्थित होता है और पुन: उस वाणी की घोषणा हमारे कानों में शुरू हो जाती है, 'अपना सर्वस्व त्याग कर दे, उसे गरीबों को बाँट दे, और मेरा अनुगमन कर।' यही एक आदर्श है जिसकी ईसा मसीह ने शिक्षा दी है, जिसकी दुनिया के सभी पैगम्बरों ने शिक्षा दी है। इस त्याग का क्या तात्पर्य है? त्याग का मर्म केवल यही है कि नि:स्वार्थता ही नैतिकता का एकमेव आदर्श है। नि:स्वार्थ बनो। पूर्ण नि:स्वार्थपरता ही आदर्श है। 'यदि किसी ने तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मार दिया है, तो दूसरा गाल भी उसकी ओर कर दो। यदि किसी ने तुम्हारा कोट छीन लिया है, तो तुम उसे अपना चोंगा भी दे दो।' OOO

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

१३४. बुद्धिबल, विवेक बिन होत न वस्तु नवीन

कोलंबस नाव में बैठकर भारत की खोज में निकला। समुद्री यात्रा में उसे अनेक प्राणघातक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। किन्तु अदम्य साहस, बुद्धिमत्ता, विवेक और दृढ़ संकल्प शक्ति के बल पर वह नई दुनिया (अमेरिका) को खोज निकालने में सफल हुआ। इस खोज के बाद जब वह स्पेन गया, तो वहाँ के राजा ने उसके सम्मान में भोज का आयोजन किया। राजा ने जब कोलबंस से उसकी सफलता का राज पूछा, तो एक मंत्री बीच में ही बोल उठा, ''किसी स्थान को खोजने में सफलता किस बात की? यह स्थल तो पहले से ही मौजूद था। उसे खोज निकालना बड़प्पन की बात नहीं। मैं ही क्या, कोई भी उसे खोज निकालता।'

कोलंबस चुपचाप सुन रहा था। उसने एक सिपाही से एक अंडा मंगा कर उसे मंत्री को देते हुए मेज पर खड़ा करने को कहा। मंत्री ने काफी कोशिश की, पर वह अंडे को खड़ा न कर सका। उसने व्यंग्य से कोलंबस को कहा, ''देखू भला तुम इसे कैसे खड़ा कर सकते हो।'' कोलंबस ने छुरी से आहिस्ते-आहिस्ते अंडे को थोड़ा काटा और धीरे-धीरे मेज पर उसे खड़ा कर दिया। यह देख मंत्री बोला, ''यह तो मैं भी कर सकता था।'' कोलंबस ने उससे कहा, ''भगवान ने मनुष्य के शरीर में दिल और दिमाग दिया है। अन्य अवयवों के समान इनमें भी शक्तियाँ छिपी हुई हैं। उनका किस प्रकार क्रियात्मक उपयोग किया जाए, यह मनुष्य पर निर्भर करता है। यदि मनुष्य में दृढ़ संकल्प, विवेक, बुद्धिमत्ता और जुझारूपन हो तो कोई भी काम असंभव नहीं होता। आत्म-विश्वास, ईश्वर पर श्रद्धा और लगनशीलता हो तो सहजता से कोई भी काम साध्य हो सकता है। रही बात किसी खोज की, तो यह काम उतना सहज नहीं है। खोज करते समय अनेक प्रकार की विषम परिस्थितियाँ आती हैं, जिनसे मनुष्य को बुद्धि-बल से जूझना पड़ता है। OOO

सारगाछी की स्मृतियाँ (३८)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराज जी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ जी ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२०-८-१९६०

महाराज – धर्म है आन्तरिक जीवन को जानना। अपने मन के भीतर किस-किस प्रकार की तरंगे उठ रही हैं, उन्हें नहीं पहचान पाने से धर्म नहीं होता। इसके अतिरिक्त जितनी भी चीजें हैं, सब बाहरी हैं। उनके साथ धर्म का कोई लेना-देना नहीं है। किसी ने एम. ए., पी. एच. डी. कर लिया, किन्तु अब तक वह केवल बाहरी जगत को ही जानता है, अपने भीतर की बात जानने के लिए उसे आध्यात्मिकता के क, ख से आरम्भ करना होगा। हम लोगों का यह पाठ, पूजा, गेरुआ, आनन्द, आश्रम, ईश्वर का काम, सभी बाहरी वस्तुएँ हैं। अपने मन की भीतरी वृत्तियाँ, तरंगों को नहीं जानने से इन सबसे कुछ भी कार्य नहीं होता। इन भक्तों को जो देख रहे हो, ये सब धर्म का 'ध' भी नहीं समझते, ये केवल प्रसाद खाना, प्रणाम करना और चन्दा देना जानते हैं। अपने भीतर क्या हो रहा है, उसे जानने की इच्छा ही नहीं होती। हमारे भक्तवृन्द भगवान की लीला का अर्थ केवल कथा-कहानी को कहना-सुनना ही समझते हैं, ईश्वर का तत्त्व नहीं सुनना चाहते। केवल सुनने से ही क्या होगा ! कुछ भी तो समझ नहीं पाते। बल्कि उलटा ही समझेंगे। जाति-भेद समाप्त करने का अर्थ समझेंगे – जो इच्छा हो वही करना, जो इच्छा, वही खाना, जहाँ-कहीं भी विवाह करना।

स्वामी रमानन्दजी की डायरी से कुछ अंश

२-६-१९५९

महाराज की सेवा करते समय उनका पैर हमारे शरीर से सट जाता था। इस प्रसंग में महाराज ने कहा, 'माँ ने रासबिहारी महाराज के शरीर से पैर छू जाने पर हाथ उठाकर नमस्कार किया था और कहा था, 'बाबा, तुम लोग देव-दुर्लभ धन हो'। माँ यही सिखा गई हैं। जो साधू होने के लिए आते हैं, उनका आदर करना चाहिए।'

विद्यालय में अध्यापन को जिससे साधना के रूप में परिणत कर सकूँ, इसके बारे में महाराज ने कहा, "१. श्री रामकृष्ण ने स्वेच्छा से इन सब छात्रों का रूप धारण किया है। यह ज्ञान है। २. श्रीरामकृष्ण छात्रों के भीतर विराजमान हैं, ऐसा जानकर उन्हें यत्नपूर्वक पढ़ाना, यह उपासना या भक्ति है। ३. श्रीरामकृष्ण छात्रों के भीतर विद्यमान हैं, यह बात कभी भूलना मत। कभी उन्हें मारना-पीटना या अपमान न करना योग – राजयोग हुआ। सदा यही भावना रखना। पढ़ाने के लिये जो कुछ करता हूँ, वह सभी कर्म ही है।"

२१-८-१९६०

(पुन: हम सेवक की डायरी के अंश पर वापस आते हैं) एक संन्यासी के देह-त्याग का प्रसंग चल रहा है। महाराज से प्रश्न किया गया – देहत्याग के समय जो लक्षण दिखाई पड़ते हैं, उनका कारण क्या है?

महाराज – जो जैसा कर्म करेगा, जैसा चिन्तन करके जीवन व्यतीत करेगा, मृत्यु के समय वैसा ही विचार उठेगा। एक संन्यासी मृत्यु के समय चिल्लाकर कहते हैं – डॉक्टर कहाँ हैं, डॉक्टर? पाँच आना छ: पैसा, पाँच आना छ: पैसा यही कहते-कहते मर गए। एक दूसरे संन्यासी के मरते समय मैंने उनके कान के पास बहुत प्रयास कर चिल्लाकर कहा – "बोलो दुर्गा, कृष्ण, काली। सबको हटाकर उन्होंने कहा – "जाओ, नहीं बोलूँगा।"

बहरमपुर में एक व्यक्ति की मृत्यु हो रही थी। सबको विलाप करते हुए देखकर उस व्यक्ति ने लोगों को बुलाकर समझाते हुए कहा –'क्यों रोते हो? अभी तो फिर जन्म लेकर आऊँगा।' यह फिर मनुष्य होकर जन्म लेगा। गीता में हैं – 'यं यं वापि ...।' श्रीधर स्वामी ने टीका में लिखा है – बेहोश होने पर बेहोश होने के पहले के चिन्तन के अनुसार गति होगी।

हमारे अनेक साधुओं की अच्छी मृत्यु होती है। मृत्यु के समय सिर में पसीना आ जाता है, केश और रोम खड़े हो जाते हैं। साधुओं में अधिकांश का प्रारब्ध-कर्म क्षय होने वाला रहता है। फिर भी एक-दो की अधोगति भी हो सकती है। सम्भवत: कोई पूर्वजन्म में गंगा-तट पर मरा हो अथवा किसी महापुरुष की कृपा पा लिया हो, अन्तिम काल में उसी पुण्य से सम्भवत: संन्यासी कुल में या ब्राह्मण कुल

में जन्म हुआ हो। किन्तु पूर्वजन्म के प्रारब्धवश इस जन्म का कार्य होता है, इसीलिए सम्भवत: आसुरी प्रकृति हो गई हो। ठाकुर कहते हैं, साधु तीन प्रकार के होते हैं, रजोगुणी और तमोगुणी साधु को भी मानना पड़ता है।

हमारे ठाकुर का धर्म कोई सम्प्रदाय नहीं है कि केवल हमारा ही धर्म ठीक है। हम धर्म का अर्थ समझते हैं – होना और बन जाना (Being and becoming)। हमारे जो कार्य देख रहे हो, वे सभी देश के लिए हैं। देश तमोगुण से आच्छन्न है। उसमें रजोगुण लाने के लिए ये सब स्कूल-कॉलेज हैं। पहले इसी स्कूल में तीन से अधिक छात्र नहीं थे। आजकल तीन सौ से अधिक हैं। जबकि अनेक छात्रों का नामांकन ही नहीं हो पाता।

२२-८-१९६०

तुम लोग साधु होने के लिए आए हो – परोपकार करने नहीं आए हो, जगत का उद्धार करने नहीं आए हो, अपनी मुक्ति के लिये आए हो। संन्यासी का महान संकट है – परोपकार करने की इच्छा। थोड़ा कुछ कार्य लेकर मस्तिष्क को ठण्डा रखकर उपासना समझ कर करना होगा, ऐसा न होने पर मस्तिष्क को गरम करके रखने पर समझना होगा कि तुम इस संसार का भोग करना चाहते हो। दो उपाय हैं – या तो इसका भोग करो, नहीं, तो सब कुछ सहनकर किसी तरह इससे बाहर निकल जाओ।

दोनों समय आसन लगाकर बैठना ही होगा, ऐसा नियम बना लो। संन्यासी का दूसरा काम ही क्या है ! यह संसार रसातल में चला जाय या स्वर्ग की तैयारी हो, किन्तु तुम्हारा यह नियम न टूटे। जिससे कार्य की सनक, कर्मोन्माद न हो, उस ओर कड़ी दृष्टि रखो।

बुद्धि को शुद्ध करो। प्रतिदिन ध्यान के समय सजगता रखो – मन क्यों इष्टमूर्ति में नहीं लगता, कैसी-कैसी बाधा देता है, उसकी वृत्ति को उठने दो, किन्तु उसे बढ़ने मत दो, विचार द्वारा दमन करो। बुद्धि नहीं रहने पर संन्यासी नहीं होता। विवेक बोध – उचित-अनुचित का बोध जिसमें नहीं है, वह संन्यासी कैसा?

देखोगे कि तीन प्रकार के लोग जप करते हैं। कोई-कोई बिल्कुल ही उस ओर अग्रसर नहीं होते। कोई-कोई कुछ दिन करने के बाद छोड़ देते हैं। कोई केवल जप करते हैं, किन्तु उनकी बुद्धि भोथरी मन्द हो जाती है। अन्त में वृद्धावस्था में अखबार और राजनीति लेकर मतवाले हो जाते हैं। मन को आत्म-चिन्तन में लगाकर 'मैं इस देह मन-बुद्धि के आवरण से परे हूँ' अन्तत: ऐसी पक्की धारणा न करने से, अन्त में अनेक प्रकार से अपकीर्ति होगी और मन संसार के झमेले में उन्मत्त रहेगा।

साधुओं में कोई-कोई भटक जाते हैं, महिलाओं से मिलने-जुलने लगते हैं। अपने मन की परीक्षा नहीं करते, यह समझ ही नहीं पाते कि उनका मन क्या चाहता है, उन्हें कहाँ लेकर जा रहा है। खराब को अच्छा समझने लगते हैं, बुद्धि अशुद्ध हो जाती है। हम लोगों में जिनकी गृहस्थ मनोवृत्ति होती है, वे साधु का वेश धारण करके भी सांसारिक चीजों में आसक्त रहते हैं। अपने माता-पिता, भाई-बहन को छोड़कर भी दूसरों के संसार को अपने समान सोचते रहते हैं। यह मानो थूककर चाटने जैसा है। तुम संन्यास-आश्रम में हो, तुम्हारा चाल-चलन, व्यवहार संन्यासी जैसा होना चाहिए, वह ठीक रहे, किसी भी तरह यह एन. जी. ओ. (गैरसरकारी संगठन के क्रिया-कलापों) जैसा नहीं होना चाहिए।

संन्यासी जगत् के उपकार के लिये हजार लोगों का उपकार नहीं करता (ऐसा कोई एक मॉडल (नमूना) या ऐसा कुछ करता है, जिसे देखकर देश के लोग मुग्ध होकर उसका अनुकरण करेंगे। उससे ही जगत का उपकार होगा।

कुछ ही दिनों बाद दुर्गापूजा है, उसमें बहुत से लोगों का समागम होगा, आश्रम में हल्ला-गुल्ला होगा। किसी ने व्यंग्य किया – यह सब रजोगुण का काम है।

महाराज – क्या बेर का पेड़ देखा है? क्या कभी बेर तोड़ा है? बेर क्या एक-एक करके तोड़ते हैं? पेड़ को पकड़कर हिलाया जाता है, उससे कच्चे-पक्के अनेक बेर जमीन पर गिर जाते हैं। तब पके-पके, अधपके-अधपके सब बेर उठा लेते हैं। उत्सव भी वैसा ही होता है। इसमें बहुत से लोग आते हैं। उनमें से कुछ पके बेर भी रहते हैं, कुछ अधपके बेर भी होते हैं, वे सब धीरे-धीरे ठाकुर के भाव के प्रति आकर्षित होते हैं।

प्रश्न – ठाकुर कहते हैं – जो राम, जो कृष्ण, वही इस समय रामकृष्ण, किन्तु तुम्हारे वेदान्त की दृष्टि से नहीं। इसका अर्थ क्या है ?

महाराज – एक दृष्टिकोण से देखने पर नाम, रूप इत्यादि मिथ्या है। जब निर्गुण स्वरूप की उपलब्धि होती है, तब तो जगत का अस्तित्व ही नहीं रहता, किन्तु जब तक मन रहता है, तब तक सब सत्य ही है। जैसे तुम निद्रावस्था में स्वप्न में मुझे हवा कर रहे हो, तब तुम, मैं पंखा, हवा करना, ये सभी तुम्हारे मन की रचना है। तुम्हारा मन ही द्रष्टा, दृश्य सब कुछ हो रहा है। **(क्रमशः)**

स्नेह-सरिता माँ सारदा

उत्कर्ष चौबे, डाल्टेनगंज, बिहार

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'' की महान भावना से गुंजायमान भारत की संस्कृति अनुपम है। क्योंकि भारत का यह मानना है कि किसी भी देश अथवा समाज में उसकी मानसिक स्थिति का अनुमान हम उस देश-काल में नारी की स्थिति से लगा सकते हैं। नारी समाज का अर्ध अंग है। नारी से ही माधुर्य व ज्ञान का विकास हुआ है। नारी की उपेक्षा का दंड सारा समाज भोगता है। यादि हम कुछ समय के लिये यह मान लें कि समाज के सारे पुरुष शिक्षित हो गए और नारियाँ अशिक्षित रह गईं, तो हमारा समाज एक ऐसे शरीर की तरह हो जाएगा जिसका आधा अंग लकवे से भी बेकार होगा –

विद्या भी हमारी तब तक न काम आएगी।
नारियों को भी जब तक शिक्षा न दी जाएगी ।।

यदि हम इतिहास के पन्नों को पलटें, तो हम पाएँगे कि मुगल और अंग्रेज काल को छोड़ कर सभी युगों एवं कालों में नारी को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। वाल्मीकि रामायण में तो उल्लेख आता है कि स्त्री भी गुरुकुल में रहकर साथ ही उच्च कोटि की विद्याएँ ग्रहण करती थीं । गार्गी और मैत्रेयी जैसी स्त्रियाँ ब्रह्मविद्या में पारंगत थीं तथा उनका ज्ञान याज्ञवल्क्य और जनक जैसे ब्रह्मविदों के समान समझा जाता है। कहा जाता है 'गृहिणी गृहमुच्यते' अर्थात् नारी ही घर है। विद्या, बुद्धि, कीर्ति, नीति, शोभा, लक्ष्मी आदि सब नारी के ही रूप हैं, परन्तु इन सब में जननी रूप सर्वश्रेष्ठ है। शिशु जन्म लेने के पश्चात सर्वप्रथम माँ शब्द का ही उच्चारण करता है। यदि किसी भी दु:ख, कष्ट अथवा विषाद में मनुष्य हो, तो उसे सबसे पहले स्वत: माँ ही याद आती है। मनुस्मृति में कहा गया है – दश उपाध्यायों से एक आचार्य बड़े होते हैं। सौ आचार्यों से पिता बड़े होते हैं। परन्तु गौरव में माता, पिता से हजार गुना बड़ी हैं। मातृत्व की अमृतवर्षा करने युग-युग में माँ लक्ष्मी का प्रादुर्भाव होता है। कभी सीता, कभी राधा तो कभी सारदा के रूप में। वे आदर्श लीला-संगिनी बन जहाँ एक ओर ईश्वर कार्य में सहायक होती हैं, तो वहीं दूसरी ओर अपने अगणित संतानों को मातृत्व के आँचल में स्नेह-सुधा का पान कराती हैं। यह निखिल जगत निश्चय ही उस परम आनन्दमयी चिन्मयी माँ का ही विराट आत्म प्रसार है। पुरातन देवी स्वरूप की अन्तिम कड़ी तथा आधुनिक सशक्त नारियों की प्रवेशिका माँ सारदा मातृत्व स्नेह को बिखेरती, ठाकुर के शब्दों में 'राख से ढकी हुई बिल्ली' हैं। यह जगत, चर-अचर, सत्-असत् सबमें वे ही हैं। सृष्टि, स्थिति और लय सबकी संचारिका माँ स्वयं हैं। शास्त्र में वर्णन है – **अहमानन्दानन्दौ । अहं विज्ञानाविज्ञाने। अहं ब्रह्माब्रह्माणी वेदितव्ये। अहं पंचभूतान्यपंचभूतानि। अहमखिलं जगत्।** अर्थात् मैं आनन्द और अनन्द रूपिणी हूँ। मैं विज्ञान और अविज्ञान रूप हूँ। जानने योग्य ब्रह्म और अब्रह्म भी मैं ही हूँ। पंचीकृत और अपंचीकृत महाभूत भी मैं ही हूँ। यह सारा दृश्य जगत मैं ही हूँ। यह सम्पूर्ण जगत मातृमय है। ज्ञातव्य हो कि श्रीठाकुर का जगत के प्रत्येक प्राणिमात्र के प्रति मातृभाव था। इसी मातृभाव के संचार हेतु रामकृष्णावतार में वह श्रीमाँ को अपनी समाधि के पश्चात छोड़ गये थे। श्रीरामकृष्ण ने स्वयं गोलाप माँ से कहा था – ''वह (श्री माँ) सारदा सरस्वती है। ज्ञान देने के लिए आई है। अन्यत्र उन्होंने कहा, वह ज्ञानदायिनी, महा बुद्धिमती है। वह क्या ऐसी-वैसी है? वह मेरी शक्ति है।''

माँ सारदा वास्तव में स्नेह की अद्वितीय सरिता हैं। उनके सान्निध्य में आने वाला प्रत्येक प्राणी उनकी असीम स्नेह-सुधा के पान से वंचित नहीं रह सका। इसका सबसे बड़ा उदाहरण 'श्रीमायेर पदप्रान्ते' नामक बांग्ला ग्रन्थ में वर्णित अनेक भक्तों की स्मृतियाँ हैं। संघजननी माँ सारदा के स्नेह-पात्र केवल ठाकुर के अन्तरंग गृहस्थ और संन्यासी शिष्य ही नहीं थे, बल्कि मुसलमान और निम्न कोटि के लोग भी थे। सबने माँ के स्नेह-आँचल की शीतल और शान्त ममत्व की छाया पाकर अपने जीवन को सही पथ पर अग्रसर किया। जिस प्रकार माँ के बेटे स्वामी सारदानन्द जी थे, उसी प्रकार अमजद डाकू भी उनका पुत्र था। माँ के हाथों से भोजन कर उसने जो मातृ-स्नेह पाया शायद उसके अधिकारी बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी नहीं थे। विष्णुपुर स्टेशन पर माँ सारदा को जानकी रूप

में दर्शन करने वाला एक हिन्दी भाषी कुली माँ के चरणों में अश्रुधारा बहाते हुए गिर पड़ा था। माँ के स्पर्श से उसे जो शान्ति की अनुभुति हुई थी, वह अवर्णनीय है। वर्तमान समाज में व्यक्ति यदि समाज में सबके प्रति ठाकुर की भाँति मातृभाव कर ले, तो सारी समस्याएँ स्वतः समाप्त हो जाएँगी।

माँ की अहैतुकी दया से तो हमारे दोष भी गुण में परिवर्तित हो जाते हैं। माँ सारदा वन्दना में कहते हैं –

स्नेहेन बध्नासि मनोऽस्मदीयं,
दोषानशेषान् सगुणीकरोषि।
अहेतुना नो दयसे सदोषान्,
स्वाङ्के गृहीत्वा यदिदं विचित्रम्।।

ठाकुर ने एक बार अपने भतीजे हृदयराम को डाँटते हुए स्पष्ट कहा था, यदि वह (श्रीमाँ) नाराज हो जाएँगी, तो संसार की कोई भी शक्ति रक्षा न कर सकेगी। स्वामी विवेकानन्द कभी-कभी इतने कट्टर हो जाते थे कि उनकी दृष्टि में माँ का स्थान श्रीरामकृष्ण से भी ऊपर होता था। वे अमेरिका की सफलता का पूरा श्रेय माँ के आशीर्वाद की शक्ति को देते थे। वे स्वामी शिवानन्द जी को एक पत्र में लिखते हैं, 'श्रीरामकृष्ण चले गए, तो कोई डर नहीं, परन्तु माताजी चली गईं, तो सर्वनाश हो जाएगा।' तभी तो डॉ. केदारनाथ लाभ की लेखनी माँ की महिमा लिखने को ललक उठती है —

तारक शरत नरेन्द्र शशि, लाटू हरि राखाल।
स्नेह-सुधा तव पान कर, सब हो गये निहाल।।
माँ दो निज पदपद्म में, नित अखण्ड विश्वास।।
कटें बन्ध-भव उरतिमिर, मिटे ताप-त्रय-रास।।

केवल भारतीय ही नहीं, अपितु समस्त विश्व माँ सारदा की मातृस्नेह- छाया में विश्राम हेतु खींचा चला आता था। मिस मार्गरेट नोबल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। दूसरों के मन को समझने वाली परम उदार माँ से कई विदेशी प्रभावित हुए। माँ के सुख को पाने के लिए तो ईश्वर को भी बाल-लीला करनी पड़ती है, परन्तु जब ईश्वर की शक्ति स्वयं संसार-वृक्ष पर स्नेह बाँट रही हो, तो उसकी अभिव्यंजना ही नहीं की जा सकती। निश्चय ही जिसे माँ का आशीर्वाद नहीं मिला, माँ का प्यार नहीं मिला, वह संसार का सबसे निर्धन और अभागा व्यक्ति है। स्वामीजी की भाँति ही कवि प्रसाद भी कहते हैं –

एक नहीं दो-दो माताएँ, नर से बढ़कर नारी।

रासबिहारी महाराज (रामकृष्ण मठ के एक संन्यासी) ने एक दिन श्रीमाँ से पूछा, तुम क्या सबकी माँ हो? माँ ने तत्काल उत्तर दिया – हाँ। फिर प्रश्न हुआ – क्या इन जीव-जन्तुओं की भी? माँ ने कहा, हाँ उन सबकी भी। आज हम अपने इन्हीं लौकिक आँखों से इस सत्य को साकार होते देख रहे हैं। सभी प्राणियों की मातृ होने के कारण ही बेलूड़ मठ में दुर्गा-पूजा के समय उन्होंने पशु बलि देने से मना कर दिया था। जिस ब्रह्ममयी माँ के ब्रह्माण्ड में कोटि सूर्य, कोटि चन्द्र परिक्रमा करते रहते हैं, ऐसी महिमामंडिता हमारी माँ हैं।

भारतीयता की मुख्य शर्त है नारी-सशक्तिकरण। माँ सारदा इसका जीवन्त उदाहरण हैं। परम शान्ति माँ सारदा के उस स्वरूप को भी संसार ने देखा है। उद्बोधन कार्यालय की दूसरी मंजिल के बरामदे से माँ ने उच्च स्वर में एक पुरुष को डाँटा था, जो अपनी भार्या को मार रहा था। माँ की वाणी से वह तुरन्त अपने कुकर्मों के लिये क्षमा याचना करने लगा और दयामयी माँ उसे अभयदान दे दीं। कितनी करुणामयी, दयामयी और दूसरों के दु:ख से तुरन्त द्रवित होने वाली हमारी माँ हैं। नारी सशक्तिकरण के उद्देश्य से ही उन्होंने सिस्टर निवेदिता द्वारा सारदा पाठशाला का आरम्भ कराया था जहाँ भारतीय नारियाँ पुन: गार्गी व मैत्रेयी के समान योग्य तथा विज्ञान के क्षेत्र में भी पुरुषों की प्रतिद्वन्द्वी हों।

भास्वता ज्ञानदीपेन दैवी भासायितुं श्रियम्।
गूढां स्वशक्तिं परमां मातृभावनया बहिः
व्यञ्जयन्तीह मैत्रेयी गार्गी वाचक्नवीसमा।
अवतीर्णा सारदा श्रीरामकृष्णानुचारिणी।।

माँ के उपदेश व्यावहारिक तथा प्रासंगिक हैं। उन्होंने अन्तिम उपदेश दिया था। 'यदि शान्ति चाहो, तो किसी का दोष मत देखना। दोष देखना अपना। संसार को अपना बना लेना सीखो। कोई पराया नहीं है, यह सारा संसार तुम्हारा अपना है। कहा जाता है **कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति** – पुत्र कुपुत्र हो जाता है, किन्तु माता कभी कुमाता नहीं होती। यह कितना सत्य है ! माँ तो स्वयं कहा करती थीं कि मेरी संतान यदि धूल-कीचड़ में अपने को सान ले, तो मुझे ही उसको साफ कर गोद में उठाना होगा। कितना प्रेम ! कितना स्नेह माँ की

इस वाणी में है। आज भी जब हम विषाद, शोक, दु:ख और द्वन्द्व के घेरे में कैद हो उठते हैं, तब हमें माँ की वाणी का स्मरण कर, उन्हें पढ़कर परम शान्ति का अनुभव होता है, एक नई आशा की किरण दिखाई पड़ती है तथा वही हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा और शक्ति देती है। श्रीमाँ सारदा देवी हमें अभय देते हुए कहती हैं, 'भय क्या है, बेटा सदा ध्यान रखना कि ठाकुर तुम लोगों के पीछे हैं। मैं हूँ, मुझ माँ के रहते भला डर किस बात का !

सचमुच माँ की यह वाणी हमारे लिए एकमात्र सहारा है। हमारी माँ कोई गुरु-माँ, बनाई हुई माँ या कहने की माँ नहीं हैं, वे तो सचमुच की माँ हैं। उनके संस्मरणों को पढ़ते-पढ़ते अपने अन्तर्मन में उनके मातृ-स्नेह की अनुभूति होने लगती है तथा नेत्रों से स्वत: ही अश्रु की धारा प्रस्फुटित हो उठती है। यह मेरा स्वयं का अनुभव है।

जिसे माँ का आशीर्वाद मिल गया, उसे संसार की सारी खुशियाँ मिल गईं, उसे ईश्वर भी मिल गए। परन्तु जो इस मानव-शरीर को धारण कर माँ को न पहचान सका, वह तो सचमुच दया का पात्र है। गंगा की तरह माँ सारदा सभी पापों से, सभी कष्टों से उद्धार करने वाली हैं। धन से सब कुछ खरीद सकते हैं, पर माँ का प्रेम, स्नेह और ममता का आँचल, उनकी छाया नहीं खरीद सकते। माँ सारदा के मातृत्व स्नेह-छाया में हम आज भी अपने आप को सुरक्षित अनुभव करते हैं। निश्चय ही यह अक्षरश: सत्य है, **सब कुछ मिल सकता है, लेकिन माँ नहीं मिलती**। परन्तु हमें तो स्नेह की वर्षा करनेवाली जगन्माता सारदा मिली हैं। माँ तो माँ होती है, सभी परिभाषाओं से ऊपर सभी सम्बन्धों से श्रेष्ठ, सभी उपमाओं से बढ़कर, निष्पाप, निष्कलंकित, त्यागमयी, परमपवित्रतास्वरूपिणी, सेवा की देवी, स्नेह-सरिता माँ सारदा ! तुम्हें शत शत कोटि नमन ! हे माँ हम-सभी सन्तानों की रक्षा करो –

कृपां कुरु महादेवि, सुतेषु प्रणतेषु च।
चरणाश्रयदानेन कृपामयि नमोऽस्तु ते।।
लज्जापटावृते नित्यं सारदे ज्ञानदायिके।
पापेभ्यो नः सदा रक्ष कृपामयि नमोऽस्तु ते।।

OOO

मन का दर्पण मिला नहीं

विजय लक्ष्मी 'विभा', प्रयाग

तन तो देखा रोज मुकुर में,
मन का दर्पण मिला नहीं।

देखा पीछे बिंब प्रकृति का, लिये खड़ा उपहार सभी।
आए स्वयं कक्ष में मेरे, अचला के श्रृंगार सभी।
नित्य सजाया तन पुष्पों से मन का उपवन मिला नहीं।
दिखा इसी दर्पण में मुझको, भूतल का विस्तार यहाँ।
मैं आगे हूँ पीछे मेरे, एक बड़ा संसार यहाँ।
तन तो चला योजनों इसमें, मन का वाहन मिला नहीं।
देखा पीछे इसी मुकुर में, जल का पारावार भरा।
और इसी के अन्तर में नव, रत्नों का भंडार भरा।
बहुत इन्हें पहना लघु तन ने, मन का भूषण मिला नहीं।
दिखा तथा प्रतिबिम्ब व्योम का, जिसमें नीरद नीर भरे।
आते पास बन पृथ्वी पर, मन्थर मन्द समीर भरे।
धोई बहुत मलिनता तन की, मन का श्रावण मिला नहीं।
प्रतिक्षण बजा सितार मधुरतम, गाए मैंने गीत यहाँ।
और आज भी इन गीतों से, उठता जाग अतीत यहाँ।
बहुत बजाई वीणा अपनी, मन का वादन मिला नहीं।
बहुत मिला सम्मान धरा पर, तथा बहुत विश्राम मिला।
निश्चय मिली विजय यदि कोई, लड़ने को संग्राम मिला।
मिला बैठने को सिंहासन, मन का आसन मिला नहीं।
जहाँ चाहता है मन चाहा, वहाँ सुलभ सोपान नहीं।
मन के इंगित भव्य भवन तक, तन के सके उड़ान नहीं
जहाँ उभय का हो सम्मेलन ऐसा साधन मिला नहीं।।

श्री रामकृष्ण हम दास तुम्हारे

कमल सिंह सोलंकी 'कमल'

ठाकुर का गान किया करता हूँ
चिन्तन-मनन हरक्षण ध्यान किया करता हूँ।
श्रीरामकृष्ण हम दास तुम्हारे, तुम अंशी, हम अंश तुम्हारे
शरणागति की चाह लिए, भक्तिरस पान किया करता हूँ।
जग में आप, आपमें जग है, जड़-चेतन न कोई विलग है
नारायण की एक झलक को नित आह्वान किया करता हूँ।
हैं आप सच्चिदानन्द रूप, जगख्याति विवेकानन्द सरूप
कमल संतचरणों का सेवक अविरल भजन किया करता हूँ

साधना की अद्भुत प्रणाली – केनोपनिषद (१२)

स्वामी आत्मानन्द

(स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनके द्वारा कलकत्ता में प्रदत्त इस प्रेरक व्याख्यान को स्वामी प्रपत्त्यानन्द द्वारा सम्पादित कर विवेक ज्योति के पाठकों हेतु प्रकाशित किया जा रहा है।)

श्वेताश्वतर ऋषि ने कहा भगवन् ! यह प्रमाण के अगोचर है, इसको प्रमाण के भीतर में बाँधा नहीं जा सकता है। यह जो आत्मचैतन्य है, वह प्रमाण की सीमा में नहीं आता है। तब बाकी ऋषियों ने कहा कि हम कैसे आपकी बात को मान लें? तब उन्होंने कहा कि प्रकारान्तरम् अपश्यन्त: – एक भिन्न प्रकार से उसे देखा जाता है। कैसे देखा जाता है? ध्यानयोगानुगमेन परम् मूलकारणं प्रतिपेदिरे – ध्यानयोग का अनुगमन करते हुए उस परम मूल कारण को उन्होंने पा लिया। यह कितनी भिन्न पद्धति है। वह प्रमाण के अगोचर है, किन्तु भिन्न प्रकार से अनुभव में आता है। वह अनुभूति की पद्धति है।

वही बात यहाँ कहते हैं, नाहम् मन्ये सुवेदेति इति – गुरुदेव ! अब मैं मान रहा हूँ कि मैंने जो कहा था कि अच्छी तरह से जान गया हूँ, वह गलत था। किन्तु कैसे कहूँ कि मैं नहीं जानता, क्योंकि मुझे अनुभव हुआ – यो नस्तद्वेद नो न वेदेति वेद च। यहाँ शब्दों का खेल है। यह बात रखने की एक शैली है, जो जानता है कि वह नहीं जानता है, वही जानता है। अब मैं जानता हूँ कि नहीं कैसे बोलूँ, किस ढंग से उसे समझाऊँ? यदि मैं कहूँ कि उसे जानता हूँ तो लोग कहेंगे कि बताओ, प्रमाणित करो, अब उसको किस प्रमाण में लाकर के समझाऊँ? यह तो सम्भव नहीं है। तो यहाँ पर कहा गया कि हमलोगों में से जो शिष्य उसको इस प्रकार जानता है कि मैं उसे नहीं जानता, फिर मैं उसे जानता भी हूँ, तो यह जो विरोधाभास है, इस विरोधाभास को शिष्य प्रकट कर रहा है।

भगवान भाष्यकार यहाँ पर भाष्य करते हुए लिखते हैं कि गुरुजी ने शिष्य को विचलित करने की चेष्टा की, किन्तु शिष्य विचलित नहीं हुआ – **एवम् आचार्येण विचालमान्योऽपि शिष्यो न विचचाल**। पहले तो गुरुजी ने पैतरें बदल-बदलकर इसके ज्ञान की परीक्षा ली कि सचमुच में जानता है क्या? लेकिन कितने भी पैतरें बदलें, अब तो वह अनुभूति सम्पन्न हो गया है और इसीलिए शिष्य विचलित नहीं होता है। क्यों विचलित नहीं होता है? कारण बताते हैं – **जगर्ज च ब्रह्मविद्यायां दृढ़ निश्चयतां दर्शयन्नात्मन:** – वह ब्रह्मविद्या में आत्मनिश्चय की दृढ़ता को प्रकट करता हुआ गरजा। क्योंकि उसने उस आत्मचैतन्य को अनुभव कर लिया था। इसलिए किसी भी तर्क के द्वारा विचलन सम्भव नहीं था। इस प्रकार उसने अपनी अनभूति को गुरुजी के सामने रखा। उसके पश्चात गुरुजी कहते हैं, वत्स ! तू बिल्कुल ठीक कहता है। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। यह जो तूने उस ब्रह्मतत्त्व को, चैतन्यतत्त्व को इस प्रकार जाना है कि उसके सम्बन्ध में न तो यह कह पा रहा है कि मैंने अच्छी तरह जान लिया, न ही यह कह पा रहा है कि मैं नहीं जानता हूँ। तू ही ठीक-ठीक जानता है। क्योंकि –

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद स :।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्।।३।।

– जिसके लिए यह तत्त्व अजाना है, वही ठीक-ठीक उसे जानता है। अजाना का यहाँ क्या अर्थ है? अज्ञान के लिए भी अजाना का प्रयोग होता है, यहाँ उस अर्थ में नहीं है। जो साधक हैं, जिसने उसको जानने की चेष्टा की है, अनुभूति प्राप्त की, पहले समझता था कि मैंने जान लिया। उसके बाद लगता है कि अरे ! मैंने तो कुछ नहीं जाना।

हमलोगों ने भी जब शास्त्र को थोड़ा-बहुत पढ़ना शुरू किया। संस्कृत तो उतनी आती नहीं थी, तो अनुवाद के सहारे पढ़ा, अंग्रेजी का अनुवाद देखा, हिन्दी का अनुवाद देखा। ऐसा लगने लगा कि हम शास्त्रज्ञ ही हो गये। बिना साधना के जब स्वाध्याय हुआ, तो ऐसा लगता था कि हम बड़े पंडित हैं, पर जब साधना जीवन में आयी, स्वाध्याय फिर से किया तब ऐसा लगा कि हम तो कुछ भी नहीं जानते थे। अरे ! यह तो कुछ भी ज्ञान नहीं था। ऐसा हमारे जीवन में ही होता है। आप देखेंगे, जब आप गीता को पहली बार पढ़ेंगे, ऐसा लगेगा कि हाँ ठीक है, जान लिया। दूसरी बार आप पढ़ेंगे, तो आपको ऐसा लगता है कि मैंने कुछ भी नहीं जाना। दूसरी बार पढ़ने से और ज्ञान आया, जितनी बार पढ़ते हैं, उतनी बार मानो ज्ञान और भी चमकता है, और भी निखरता है, बाद में हमें ऐसा लगता है कि अरे उस

समय जो हमने समझा था, कुछ भी नहीं समझा था। यदि कोई कह दे, पहली बार पढ़कर तुमने कुछ भी नहीं समझा है, तो वही चोट पहुँचती थी। वाह ! हमने पढ़ लिया है और ये कहते हैं कि कुछ भी नहीं समझा है।

श्रीरामकृष्ण देव एक बड़ा सुन्दर उदाहरण देते हैं। एक भागवती पण्डित किसी राजा के पास गया और कहा कि राजन् ! आप मुझसे भागवत सुन लीजिए। राजा ने कहा – ठीक है, आप एक बार फिर से भागवत पढ़ लीजिए, उसके बाद सुनाने आइएगा। पण्डित को बहुत क्रोध हुआ। यह राजा बहुत अहंकारी है, मुझे पढ़ने के लिए कहता है। अरे ! मैंने तो भागवत पढ़ा है, इसीलिए तो सुनाने के लिए आया हूँ। लेकिन सामने कुछ बोल नहीं सका, चला गया। उसने सोचा राजा ने कहा है, तो कोई इसका अर्थ होगा, चलो पढ़ लेते हैं, इसलिए एक बार फिर से भागवत पढ़ा। पुन: आकर राजा से कहा, राजन् ! आपने जैसा कहा था, मैंने फिर से भागवत पढ़ लिया है। अब आप भागवत मुझसे सुन लीजिए। महाराज ने कहा, एक बार फिर से पढ़िए। इस समय तो उसे और भी गुस्सा आया, सोचा, राजा बड़ा अहंकारी है, मुझे फिर से भागवत पढ़ने के लिये कहता है। अरे उसके कहे अनुसार मैंने पुन: भागवत पढ़ लिया, अब कहता है कि एक बार फिर से पढ़ लीजिए। तीसरी बार पढ़कर वह पुन: जाकर बोला, राजन् ! आपके निर्देशानुसार मैंने पुन: भागवत पढ़ लिया है, अब आप भागवत सुनना पसन्द करेंगे। राजा ने कहा कि जाइए, एक बार फिर से आप पढ़ लीजिए, उसके बाद मैं भागवत सुनूँगा। अब तो पंडित बहुत क्रोधित हो गया। सोचा, यह राजा तो बड़ा अहंकारी है। छोड़ो इसे। लेकिन मन में आया कि पैसा मिलेगा, कुछ यश-प्राप्ति होगी, इसलिए उसने पुन: पढ़ना शुरु किया। जब चौथी बार पढ़ा, तो भागवत का शब्दार्थ तो आता था, किन्तु जो विशेष अर्थ अभी तक ध्वनित नहीं हो रहे थे, वे ध्वनित होने लगे। शब्दों में जो मर्म निहित है, वह मर्म उसके भीतर में बज नहीं रहा था, अब मर्म बजने लगा। भागवत पढ़ते-पढ़ते भाव आने लगा। भाव आने से लगा – अरे यह क्या पैसा? पैसा मिथ्या है, नाम मिथ्या है। अब कहाँ जाना है? उसकी कभी भी राजा के पास जाने की इच्छा ही नहीं हुई। बहुत दिन बीत गए। राजा ने देखा, पंडित जी आये नहीं, क्या बात है? राजा ने स्वयं उनके यहाँ जाकर देखा, पण्डित भावमग्न हो भागवत का पाठ कर रहे हैं और उनके नेत्रों से अविरत प्रेमाश्रु बह रहे हैं। देखकर राजा ने कहा, 'महाराज ! अब आपका भागवत-पाठ ठीक-ठीक हो रहा है। अब मैं आपसे भागवत सुनूँगा।'

यहाँ भी ठीक ऐसा है – जो ऐसा मानता है कि मैं नहीं जानता, ऐसा अज्ञानी भी मान सकता है, जिसको कुछ नहीं मालूम, वह सही मानता है कि मैं कुछ नहीं जानता, पर यहाँ अज्ञानी का प्रकरण नहीं है। यहाँ ज्ञानी का प्रकरण है। जो साधक है, उसका प्रकरण है। जिसने जानने की चेष्टा की है, उसका यह प्रकरण है। दूसरा जो मानता है कि मैं जानता हूँ, वह नहीं जानता है – अविज्ञातं विजानतां विज्ञातम् अविजानताम् – जो विजानताम है, जो जानकार है, अनुभूतिसम्पन्न है, उनके लिए आत्मा मानो अजाना है, ऐसा है और जो अज्ञानी, जो नहीं जानते हैं वस्तुत: अनुभूति जिन्होंने नहीं की है, वे ऐसा मानते हैं कि मैं आत्मा को जानता हूँ। यह वैतर्किक प्रणाली है। जब कोई वस्तु बहुत सूक्ष्म होती है, तो विरोधी गुणों के माध्यम से वस्तु को समझने की चेष्टा की जाती है। विज्ञान में भी है, जैसे electron है। electron का गुण-धर्म क्या है? किसी ने कहा कि यह partical के समान है, कणात्मक है, यह कण के रूप में व्यवहार करता है। फिर उसके पश्चात् वैज्ञानिकों ने देखा कि यह केवल कणात्मक व्यवहार ही नहीं करता, यह तो तरंग के रूप में भी व्यवहार करता है। इसकी जो गति है, वह तरंग के समान है। अब यह कणात्मक है या तंरगात्मक है? जब इसका निर्णय नहीं हुआ और दोनों आपात विरोधी गुण उसके भीतर दिखाई देने लगे, तो एक नये शब्द का आविष्कार किया गया। यह electron किस प्रकार वर्तन करता है? अरे यह wavicale है, तरंगात्मक है, wave से wave लिया, particale से इकल लिया, मानो wavicale बनाया। यह विज्ञान के क्षेत्र में है।

(क्रमशः)

यदि कोई व्यक्ति स्वार्थी है, इसलिए क्या मुझे भी स्वार्थी बनना होगा? जगत की सारी स्वार्थपरता को सहन करते हुए हमें स्वार्थ की गन्ध तक से रहित होना होगा, यही आदर्श है।

– स्वामी प्रेमानन्द (श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य)

राजेन्द्र प्रसाद जी के बलदेव चचा और मौलवी साहब

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद हमारे देश के प्रथम राष्ट्रपति थे। बचपन में उनकी ख्याति एक मेधावी, होनहार और देशभक्त छात्र के रूप में थी। जब वे पाँच-छ: वर्ष के थे, तब उस समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार एक मौलवी द्वारा उनका अक्षरारम्भ कराया गया। छोटे राजेन्द्र के एक चचा थे। बलराम चचा। बलराम चचा का बड़ा ही मजेदार स्वभाव था। वे घुड़सवारी करना, बन्दूक चलाना, गुलेल चलाना, दवाएँ बनाना तथा वितरण करना और शतरंज खेलने जैसी अनेक बातें जानते थे।

मौलवी साहब बड़े ही विचित्र व्यक्ति थे। वे कहते थे कि वे भी बहुत सारी बातें जानते हैं। बलदेव चचा के लिए यह बहुत आनन्द का विषय बन गया। चचा मौलवी जी को तरह-तरह की बड़ी-बड़ी बातें सुनाते। चचा की बातों में आकर मौलवी जी भी कह देते कि वे स्वयं भी बहुत सारी बातें जानते हैं, चाहे उनका उन्हें कुछ भी ज्ञान न हो! जैसे कि मौलवी जी कहते कि वे शतरंज बहुत अच्छी तरह खेलना जानते हैं। किन्तु जब भी वे बलदेव चचा के साथ खेलते, तो हार जाते! छोटे राजेन्द्र भी अपने सहपाठियों के साथ इन सबका आनन्द लेते।

बच्चों का आँगन

एक दिन बलदेव चचा ने मौलवी जी से कहा कि बगीचे में एक बन्दर घुस आया है, उसे भगाना चाहिए। इतना कहना ही था कि मौलवी जी ने डींग मारी कि वे भी गुलेल चलाना जानते हैं। बलदेव चचा तो जानते थे कि उनको गुलेल चलाना बिल्कुल नहीं आती। वे मौलवी जी को लेकर बगीचे में गए और उनके हाथ में गुलेल और गोली देकर कहा कि खूब खींचकर बन्दर को लगाइए। मौलवी जी ने खूब खींचकर गोली छोड़ी। गोली तो लगी, पर बन्दर को नहीं, मौलवी जी के ही बाएँ हाथ के अँगूठे में!

इसी प्रकार एक शाम को मौलवी जी, चचा और अन्य लोग तरह-तरह की चर्चा कर रहे थे। इतने में एक साँड़ देखने में आया। लोगों ने कहा कि साँड़ किसी को भी छोड़ता नहीं। बलदेव चचा के इशारे पर मौलवी जी सीना तान कर साँड़ के सामने हो गए। होना क्या था, साँड़ ने मौलवी जी को पटक दिया! इस तरह के मजाक मौलवी जी और बलदेव चचा को लेकर होते ही रहते थे।

एक दिन ऐसे ही बलदेव चचा ने मौलवी जी को बन्दूक चलाने की तरकीब दी। मौलवी जी किसी बात को न जानना स्वीकार करना अपने सम्मान के विरुद्ध समझते थे। उन्होंने कह दिया कि वे भी अच्छी तरह निशाना लगाना जानते हैं। एक जगह काफी ऊँचाई पर एक गिद्ध बैठा हुआ था। बलदेव चचा ने मौलवी जी को उस पर निशाना लगाने को कहा। मौलवी जी को जो बन्दूक दी गई थी, वह पुराने ढर्रे की थी। उसमें ऊपर से बारूद डालना पड़ता था और बन्दूक थोड़ी वजनी भी थी। मौलवी जी ने कदाचित इसके पहले बन्दूक कभी चलाई ही नहीं थी! उन्होंने बन्दूक अपनी छाती पर रखी और निशाना दागा। बन्दूक का घोड़ा दबा, आवाज हुई और इधर गिद्ध के बदले मौलवी जी जमीन पर चित! किसी तरह उनको उठाकर घर लाया गया।

छोटे राजेन्द्र और उनके कुटुम्ब के अन्य दो चचेरे भाइयों को मौलवी जी पढ़ाते थे। इनमें से एक का नाम था जमुना भाई। वे ही इस छोटे दल के लीडर थे – खेल-कूद, चुहलबाजी, लड़कपन की अनेक शरारतों के लीडर। मौलवी जी इन सबको दोपहर की विश्रान्ति के अलावा सुबह और शाम पढ़ाते थे। शाम होते ही बच्चों को नींद आना शुरू हो जाती। उस समय बिजली आदि की सुविधा न होने से गाँववाले रात को जल्दी सो जाते थे। बच्चों को नींद के मारे थोड़ा झुकने पर मौलवी जी की मार पड़ती। जैसे खेल-कूद में जमुना भाई लीडर थे, वैसे ही जल्दी छुट्टी दिलाने में।

उस समय तेल वाले दीये की रोशनी में शाम को पढ़ाया जाता था। दीया पर्याप्त समय तक जले, इतना तेल उसमें डालकर दाई रख देती थी। जमुना भाई ने एक तरकीब खोज निकाली। वे दिन में ही एक कपड़े में राख अथवा मिट्टी डालकर उसकी पोटली बना देते और उसे छिपा देते। जिस दिन दीये में तेल अधिक दिखता, वे वह पोटली दीये में डाल देते। पोटली पूरा तेल सोख लेती और दिया जल्दी ही बुझ जाता। मौलवी जी दाई के नाम पर चिढ़ जाते कि उसने आज तेल कम रखा और पुस्तक बन्द कर सबको छुट्टी दे देते! ○○○

युवकों की जिज्ञासा और उसका समाधान

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

प्रश्न – आत्मसम्मान और अहंकार में क्या अन्तर है? सागर विश्वकर्मा, चाँपा

उत्तर – आत्मसम्मान अपने गुणों एवं व्यक्तित्व का उचित मूल्यांकन करने पर आता है। अहंकार अपने गुणों को आवश्यकता से अधिक बढ़ा-चढ़ाकर कहने तथा दूसरों को हीन समझने के कारण होता है। अत: अपने व्यक्तित्व एवं गुणों का सही मूल्यांकन ही करना चाहिए। नान्य: पन्था विद्यतेऽयनाय – अहंकार को छोड़ने का दूसरा कोई पथ नहीं है।

प्रश्न – सबसे प्रेम क्यों करें? सागर विश्वकर्मा चाँपा

उत्तर – प्रेम मनुष्य के हृदय की एक स्वाभाविक वृत्ति या भाव है। यदि हम अपने हृदय के प्रेम का विस्तार नहीं करेंगे, तो वह दूषित होकर स्वार्थ में लग जाएगा और हमारे हृदय का प्रेम कलुषित होता जाएगा। इसलिए सभी से प्रेम करना आवश्यक है।

प्रश्न – जब लोग कुछ कार्यों में मुझसे आगे निकल जाते हैं, तो मुझे जलन होती है। इससे कैसे बचें, कृपया सुझाव दें। अलेस्कर लकड़ा, अम्बिकापुर

उत्तर – ईर्ष्या के मूल में दूसरों से अपनी तुलना करने की वृत्ति है। जब हाथ की पाँच अँगुलियाँ समान नहीं हैं, तब भला दो व्यक्तियों में एक समान गुण कैसे हो सकते हैं? अत: अपनी ओर ध्यान रखकर अपने गुणों का विकास करने का प्रयत्न करना चाहिए। उससे द्वेष की वृत्ति नहीं रहेगी। दूसरों से अपनी अनावश्यक तुलना कभी नहीं करनी चाहिए। दूसरों के प्रति सदा प्रेम और सद्भाव का विकास करना चाहिए। इससे हमारे सद्गुणों का विकास होगा और हमें किसी से ईर्ष्या नहीं होगी।

प्रश्न – मैं पढ़ता तो हूँ, लेकिन परीक्षा में उसका कुछ ही अंश याद रहता है, बाकी भूल जाता है। मैं कैसे पूरा याद रख सकता हूँ, बताइए? दीपेश देवांगन

उत्तर – किसी भी बात को याद रखने के लिए एकाग्रता परम आवश्यक है। पढ़ते समय एकाग्रता न होने के कारण ही हम कुछ बातों को याद रखते हैं तथा कुछ को भूल जाते हैं। इसलिए पढ़ते समय अधिक-से-अधिक एकाग्रता के साथ विषय को पढ़ना चाहिए तथा उस पर विचार भी करना चाहिए। तब भूल प्राय: नहीं होती।

बच्चों जग में ऐसे रहना

बाबूलाल परमार

बच्चों जग में ऐसे रहना, हम सब जैसे भाई-बहना।।
मात-पिता का मानो कहना, गुरुजनों के गुण को गहना।।
कष्टों को हिम्मत से सहना, कभी न दूसरों के दिल दहना।।
विद्यालय नित्य नियम से जाना, छुट्टी में सीधे घर आना।।
सदाचार के पथ पर चलना, आनन्द मग्न मस्त मचलना।।

वीरों का जीवन हो जैसा

बच्चों तुम्हारी बोली हो कैसी?
शब्दों में शक्कर घोली हो जैसी।
बच्चों तुम्हारा रहना हो कैसा?
नदी में जल का बहना हो जैसा।
बच्चों तुम्हारा व्यवहार हो कैसा?
फूलों की बहार हो जैसा।
बच्चों तुम्हारा चरित्र हो कैसा?
सच्चा सज्जन मित्र हो जैसा।
बच्चों तुम्हारा जीवन हो कैसा?
वीरों का जीवन हो जैसा।

महाकवि निराला पर बंगला साहित्य और विश्वकविगुरु टैगोर का प्रभाव

डॉ. राजकुमार उपाध्याय 'मणि'

हिन्दी विभागाध्यक्ष, सरगुजा विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर

भारतीय साहित्य में अनेक भाषाओं के समृद्ध साहित्य मिलते हैं। इनमें सर्वाधिक समृद्ध संस्कृत भाषा का साहित्य है। इस संस्कृत से अनेक भाषाओं का विकास हुआ है। उसके साहित्य भी विपुल भण्डार से परिपूर्ण हैं। इसी प्रकार भारतीय साहित्य में बंगला साहित्य का अन्यतम स्थान है, जिसके साहित्य का प्रभाव भारतीय भाषाओं और उसके साहित्य पर भी दिखाई देता है। इस दृष्टिकोण से बंगला भाषा और साहित्य का सर्वाधिक प्रभाव हिन्दी में दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि आधुनिक हिन्दी साहित्य की अनेक विधाएँ बंगला साहित्य से प्रेरित एवं प्रादुर्भूत हैं। हिन्दी के अनेक साहित्यकारों के प्रेरणास्त्रोत भी बंगला साहित्यकार हैं। इस दृष्टि से बंगला साहित्य का प्रभाव आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख आन्दोलन छायावाद पर स्पष्ट लक्षित होता है, जिसे हम स्पष्ट शब्दों में कह सकते हैं कि छायावाद बंगला साहित्य की रहस्यात्मक एवं रोमांटिसिज्म की उपज है। इस काव्यान्दोलन पर विश्वकविगुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर का सर्वाधिक प्रभाव दिखाई देता है। इतना ही नहीं, छायावाद के चतुस्स्तम्भ – प्रसाद, पंत, निराला एवं महादेवी वर्मा के साहित्य में टैगोर के विचार एवं भाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं – दार्शनिक विचारधारा में प्रसाद के काव्य पर अभिनवगुप्त और कश्मीर के शैवागम का प्रभाव था, पन्त जी पर अरविन्द घोष एवं मानवतावाद का प्रभाव था, निराला जी के काव्य पर वेदान्त और श्रीरामकृष्ण व विवेकानन्द का प्रभाव था, ऐसे ही महादेवी वर्मा पर बौद्धदर्शन एवं शून्यवाद का प्रभाव था। परन्तु छायावाद पर बंगला साहित्य और उनके महान साहित्यकारों के प्रभाव सर्वथा प्रतिबिम्बित हैं।

हिन्दी के छायावादी कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ही बंगला साहित्य से प्रभावित नहीं थे, बल्कि समूचा आधुनिक भारतीय साहित्य भी प्रभावित था। लेकिन आधुनिक काल में विश्वकवि गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर का प्रभाव सर्वाधिक प्रतीत होता है। क्योंकि इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि बंगला साहित्य का प्रभाव भारतीय साहित्य या हिन्दी साहित्य पर नहीं था। इस बात को अत्यन्त अनुसंधानपूर्ण रूप में डॉ. रामविलास शर्मा ने 'निराला' की साहित्य साधना 'द्वितीय-खण्ड में लिखा है – 'बीसवीं सदी के प्रथम तीन दशकों में रवीन्द्रनाथ के साहित्य ने अनेक भारतीय भाषाओं के लेखकों को प्रभावित किया। सन् १९२० के आन्दोलन के बाद महात्मा गाँधी संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष और रवीन्द्रनाथ संसार के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में पूजे जाने लगे। रवीन्द्रनाथ ने बँगला भाषा को नया जीवन दिया, गद्य और पद्य की अनेक विधाओं का अभूतपूर्व विकास किया, वे पूर्व और पश्चिम का मेल चाहते थे, किन्तु इसके लिए अपना सिर झुकाने को तैयार न थे। देश के भीतर और बाहर उन्होंने आत्मसम्मान की रक्षा के साथ राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की भी रक्षा की। इनमें न केवल बंगाल की चण्डीदास, माइकेल मधुसूदन दत्त, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की परम्परा नये रूप में विकसित हुई, वरन् कालिदास और कबीर जैसे सन्तों की परम्परा ने भी नया जीवन पाया।'' (पृ.५२६)
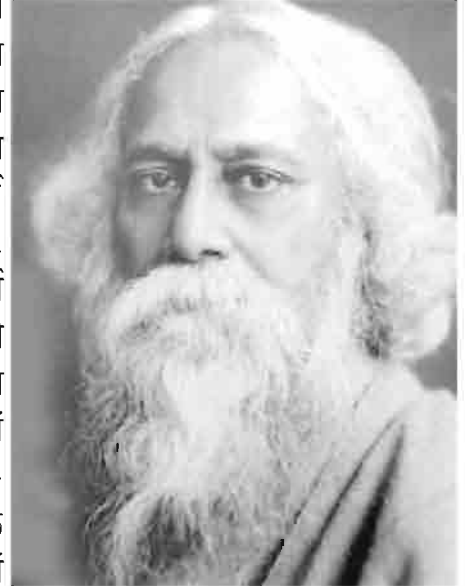
१९वीं शताब्दी का बंगला साहित्य और माइकेल मधुसूदन दत्त, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रंगलाल वन्द्योपाध्याय, बिहारीलाल चक्रवर्ती, हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय, और नवीनचन्द्र सेन जैसे साहित्यकारों का साहित्य भारतीय साहित्य में नवोन्मेष किया और भारतीय साहित्य के जागरण में प्रभूत योगदान दिया। बंगला और टैगोर के प्रभाव को अनेक हिन्दी समीक्षकों, कवियों और साहित्यकारों द्वारा प्रशंसित किया गया है। इस क्रम में छायावादी विचारधारा के कवि-समालोचक आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री का यह उद्धारण उल्लेखनीय है —

''आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास में पन्त, प्रसाद निराला के अमर नाम ज्योति के पत्र पर लिखे हुए हैं। ये नाम शेक्सपीयर, गेटे या टैगोर की कोटि के हैं, जिन्हें निकाल देने पर अंग्रेजी, जर्मन या बंगला की तरह नई हिन्दी में भी ऐसा कुछ न रह जाएगा, जो कभी पुराना न पड़े, जो प्रत्येक नए के लिए किसी-न-किसी रूप में प्रेरणा का स्रोत बना रहे।' (त्रयी पृ.११)

छायावाद का विकास कैसे हुआ और बंगाल के समाज और साहित्य का प्रभाव कैसे पड़ा? इस महत्व को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में स्वीकार करते हुए लिखा है – 'छायावाद' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहाँ उसका सम्बन्ध काव्य वस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। रहस्यवाद की अन्तर्भुक्त रचनाएँ पहुँचे हुए पुराने संतों या साधकों की उसी वाणी के अनुकरण पर होती हैं, जो तुरीयावस्था या समाधिदशा में नाना रूपकों के रूप में उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान का आभास देती हुई मानी जाती थीं। इस रूपात्मक आभास को यूरोप में 'छाया' (फैटसमाटा) कहते थे। इसी से बंगाल में ब्रह्मसमाज के बीच उक्त वाणी के अनुकरण पर जो आध्यात्मिक गीत या भजन बनते थे, वे 'छायावाद' कहलाने लगे। धीरे-धीरे यह शब्द धार्मिक क्षेत्र से वहाँ के साहित्य क्षेत्र में आया और फिर रवीन्द्र बाबू की धूम मचने पर हिन्दी के साहित्य क्षेत्र में भी प्रकट हुआ।'' (पृ.३९४) इतना ही नहीं, आगे फिर आचार्य शुक्ल जी प्रसाद के काव्य में बंगभाषा के प्रभाव को रेखांकित करते हैं – ''प्रसाद जी में ऐसी मधुमयी प्रतिभा और ऐसी जागरूक भावुकता अवश्य थी कि उन्होंने इस पद्धति का अपने ढंग पर बहुत ही मनोरम विकास किया। संस्कृत की कोमल कान्त पदावली का जैसा सुन्दर चयन बंगभाषा के काव्यों में हुआ, वैसा अन्य देश-भाषाओं के साहित्य में नहीं दिखाई पड़ता। उनके परिशीलन में पदलालित्य की जो गूँज प्रसाद जी के मन में समाई वह बराबर बनी रही।' (पृ. ४००)

आचार्य शुक्ल जी पुनः अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में पंत जी के वर्णन की शुरुआत में 'गीतांजलि' का प्रभाव लक्षित करते हैं – 'पंत जी की रचनाओं का आरम्भ १९७५ से समझना चाहिए। इनकी प्रारम्भिक कविताएँ 'वीणा' में जिसमें 'हृतंत्री' के तार भी हैं, संगृहीत हैं। उन्हें देखने पर 'गीताजंलि' का प्रभाव कुछ लक्षित अवश्य होता है। पर साथ ही आगे चलकर प्रवर्धित चित्रमयी भाषा के उपयुक्त रमणीय कल्पना का जगह-जगह प्रचुर आभास मिलता है। 'गीतांजलि' का रहस्यात्मक प्रभाव ऐसे गीतों को देखकर ही कहा जा सकता है।' (पृ.४०९) यद्यपि आगे चलकर आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी का आक्रोश निरालाजी पर दिखाई देने लगता है – 'पहले कहा जा चुका है कि 'छायावाद' ने पहले बंगला की देखादेखी अँग्रेजी ढंग की प्रगति पद्धति का अनुसरण किया। प्रगति पद्धति में नीव-सौंदर्य की ओर अधिक ध्यान रहने से संगीत तत्त्व का अधिक समावेश देखा जाता है। परिणाम यह होता है कि समन्वित अर्थ की ओर झुकाव कम हो जाता है। हमारे यहाँ संगीत राग-रागिनियों में बंधकर चलता आया है; पर यूरोप के उस्ताद लोग तरह-तरह की स्वर लिपियों की अपनी नई-नई योजनाओं का कौशल दिखाते हैं। जैसे और सब बातों की, वैसी ही संगीत के अँग्रेजी ढंग की नकल पहले बंगाल में शुरू हुई। इस नए ढंग की ओर निराला जी सबसे अधिक आकर्षित हुए और अपने गीतों में उन्होंने उसका पूरा जौहर दिखाया। संगीत को काव्य के और काव्य को संगीत के अधिक निकट लाने का सबसे अधिक प्रयास निराला जी ने किया है।'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.४२१) वैसे तो आचार्य शुक्लजी ने निराला को अपने 'इतिहास'-ग्रंथ के पन्ने-पन्ने पर बंगाल और रविबाबू के प्रभाव को रेखांकित किया है। यथा – ''निराला जी पर बंग भाषा की काव्य शैली का प्रभाव समाज में गुंफित पदवल्लरी, क्रियापद के लोप आदि में स्पष्ट झलकती है। लाक्षणिक वैलक्षण्य लाने की प्रवृत्ति इनमें उतनी नहीं पाई जाती,

जितनी प्रसाद और पंत में।'' (पृ. ४२२) अगले पन्ने पर उल्लिखित है कि – ''रहस्यवाद से सम्बन्ध रखनेवाली निरालाजी की रचनाएँ आध्यात्मिकता का वह रूप-रंग लेकर चली हैं, जिसका विकास बंगाल में हुआ। रचना के प्रारम्भिक काल में इन्होंने स्वामी विवेकानन्द और श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर की कुछ कविताओं के अनुवाद भी किए हैं। अद्वैतवाद के वेदान्ती स्वरूप को ग्रहण करने के कारण इनकी रहस्यात्मक रचनाओं में भारतीय दार्शनिक निरूपणों की झलक जगह-जगह मिलती है।'' (पृ.४२३)

केवल महाकवि निरालाजी के ऊपर ही यह प्रभाव नहीं था, बल्कि हिन्दी साहित्य पर भी बंगला साहित्य का इतना अधिक प्रभाव था कि हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओं का जन्म इसी से माना जाता है। आधुनिक हिन्दी के विकासकाल में नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध और समालोचना जैसी अनेक विधाओं पर बंगला साहित्य का प्रभाव अप्रतिम दिखाई देता है। हिन्दी खड़ी बोली गद्य के प्रारम्भिक समय में हिन्दी के अनेक साहित्य बंगभाषा से अनूदित हुए हैं। इसका कारण स्पष्ट प्रतीत होता है कि भारत ब्रिटिश राज के शासन का आरम्भ बंगभूमि से हुआ, और बंगाल में भारतीय नवजागरण के नवोन्मेष के परिणामस्वरूप हिन्दी में नवजागरण शुरू हुआ, क्योंकि इस नवजागरण ने जहाँ अंग्रेजी शिक्षा को बढ़ावा दिया वहीं १८०१ में स्थापित फोर्ट विलियम कॉलेज (कलकत्ता) में देशी भाषा (हिन्दी) के अध्ययन-अध्यापन का श्रीगणेश भी हुआ। ईसाइयत के प्रचार-प्रसार के लिये लगभग इसी अवधि में सिरामपुर में छापाखाना खोला गया और विलियम केटे व अन्य पादरियों के सहयोग से बाइबिल का अनुवाद उत्तर भारत की कई भाषाओं में कराकर प्रचारित-प्रसारित कराया गया। इसी के आसपास बंगाल की धरती से ही हिन्दी की पत्रकारिता का श्रीगणेश हुआ और ३० मई, १८२६ ई. को हिन्दी में 'उदन्त मार्तंड' समाचार पत्र का प्रकाशन पं. जुगुल किशोर शुकुल द्वारा किया गया। तीन वर्षों बाद बंगदूत नामक संवादपत्र भी प्रकाशित हुआ। इस प्रकार से देखा जाए, तो सम्पूर्ण बंगाल ज्ञान-विज्ञान, धर्म-संस्कृति, समाज और साहित्य के क्षेत्र में भारत का अंग्रेजी राज्य सिद्ध हुआ जिसका चँहुमुखी प्रभाव सम्पूर्ण देश और साहित्य के साथ-साथ हिन्दी पर भी अधिक दिखाई पड़ता है।

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय द्वारा विरचित कालजयी कृति आनन्दमठ का 'वन्देमातरम्' गीत समस्त भारतीय जनता के लिए त्याग और बलिदान का प्रेरणास्रोत बन गया था। बंगाल के राष्ट्रीय कवि नजरुल इस्लाम की कविताओं से राष्ट्रभक्तों एवं साहित्यकारों में क्रान्ति की ज्वाला का भावोन्मेष भी हुआ था। अतएव राष्ट्रीय आन्दोलन के राजनेताओं को यह अनुभूति हो रही थी कि राष्ट्रीय एकता भाषा के आधार पर स्थिर हो सकती है, जिस तथ्य को निराला जी ने स्वीकार करते हुए 'सुधा' जून, १९३० ई. में सम्पादकीय में लिखा था – ''भारतवर्ष को राष्ट्रीयता के एक पाश में अवश्य बाँधना पड़ेगा। बिना एक राष्ट्रभाषा के राष्ट्रीयता का विकास नहीं हो सकता। यह बात राजा राममोहन राय, दयानन्द आदि ने समझी थी और इस युग की सभी महान आत्माएं इसका समर्थन करती हैं।'' इस राष्ट्रभाषा की प्रेरणा निराला जी को बंगाल से ही मिली थी, इसलिए वे स्कूल एवं विश्वविद्यालय में मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा दिए जाने पर जोर देते थे। ऐसी भाषाई शिक्षा का संदेश बंगाल के महापुरुषों – रवीन्द्रनाथ ठाकुर और प्रफुल्लचन्द्र राय के विचारों से ही मिला था।

अत: स्वाभाविक है कि भारतभूमि के ऐसे अँग्रेजी बंगाल राज्य में जन्मे महाकवि निराला की चेतना यहाँ की शिक्षा, संस्कृति और साहित्य से अछूती नहीं रही। निराला का मन रामकृष्ण परमहंस से प्रच्छालित था। स्वामी विवेकानन्द के दर्शन से अवगाहित था और गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर के साहित्य से प्रभावित था। इतना ही नहीं, निराला का व्यक्तित्व भी बंगाल से रचा-बसा था। डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ने इस विषय में लिखा है - 'छ: फुट के लगभग कद, चौड़ा सीना, विशाल मस्तक, दिव्य तेज से जगमगाती आँखें, विशाल बाहु और उनमें नुकीली लम्बायमान अंगुलियाँ, लम्बे बाल और बंगाली वेशभूषा के साथ मन्द-मन्थर गति से चलना, इन सब संभार को देखकर सहज ही वे असाधारण लगते थे। सचमुच थे भी असाधारण।''

बंगला साहित्य के सर्वश्रेष्ठ महाकवि गुरु रवीन्द्र टैगोर के प्रभाव को निराला पर स्पष्टतया देखा जाता है। इस बात की पुष्टि हिन्दी के इन लेखकों के विचारों से स्वत: सिद्ध हो जाती है। पुन: अपने संस्मरण में डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ने लिखा है – ''आधुनिक युग में

रवीन्द्रनाथ का सौन्दर्य बोध, कबीर का फक्कड़पन, तुलसी का लोकमंगल एक साथ इस महाकवि के साहित्य में अनुस्यूत हो गए हैं।'' इनके ऊपर आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ने इसी प्रभाव एवं महत्त्व को रेखांकित किया है – ''निराला जॉनसन की तरह कर्मठ और अध्यवसायी, लार्डवायरन से उद्‌भट प्रत्यालोचक, कीट्स और टैगोर की तरह सुकवि और टालस्टाय, ह्यूगो और शाँ की तरह उत्क्रान्तिकारी और औपन्यासिक हैं।'' ऐसे ही प्रसिद्ध लेखक विश्वम्भर 'मानव' ने 'निराला' को विभिन्न व्यक्तित्वों में से एक मानते हुए कहा है – ''जैसे हरिश्चन्द्र के साथ 'भारतेन्दु' या पं. रामचन्द्र शुक्ल के साथ 'आचार्य', समाज-सेवा के क्षेत्र में 'महामना' शिक्षा के क्षेत्र में 'गुरुदेव', राजनीति के क्षेत्र में 'महात्मा' है, वैसे ही साहित्य में 'महाप्राण' आदर का सूचक है, । निराला जी ने साहित्य के अखाड़ा में जीवन भर लड़ा था, किन्तु इसकी सीख उन्हें, कुश्ती के अखाड़ा का दाँव, अपनी जन्मभूमि महिषादल (बंगाल) से ही मिली थी। डॉ. रामविलास शर्मा ने 'निराला की साहित्य साधना' में लिखा है – ''हिन्दी के छन्दों की अपेक्षा उन्हें कुश्ती के दाव-पेंच ज्यादा याद हैं। धोबी पाटा, कलागंज, सखी, घिस्सा, कुली वगैरह रियाज के साथ बरजबान है। थियरी और प्रैक्टिकल दोनों ही फर्स्ट क्लास पा चुके हैं। महिषादल और गढ़ाकोला के दंगलों में भी उन्होंने भाग लिया।''

इसलिए हम कह सकते हैं कि निराला जी का इस धरती से अधिक लगाव था। यही कारण था कि उनका रहस्यवाद या अद्वैतवाद भगवतपाद शंकराचार्य के अद्वैतवाद की भाँति गतिहीन नहीं है, अपितु वह स्वामी विवेकानन्द के अद्वैतवाद की भाँति गतिशील है। अतएव निराला की वैचारिक चेतना में अनेक अन्तर्धाराओं का प्रवाह है। शाक्त उपासना में शंकराचार्य और कालिदास दोनों वरेण्य हैं, किन्तु काली की आराधना की जो विराट शक्ति स्वामी विवेकानन्द में विद्यमान है, वह न तो शंकराचार्य में दिखाई देती है, न कालिदास में। वह स्वामी विवेकानन्द में शक्ति काली रूप में है, जिसमें अद्वैत की भावधारा प्रतिबिम्बित है। इस बंगाल की धरती के काली पूजन को निराला ने विवेकानन्द से ग्रहण किया था और मृत्युरूपा शक्ति को अपनाया था। उसे डॉ. रामविलास शर्मा ने इस रूप में व्यक्त किया है –

'हये वाक्य मन अगोचर सुखे दुखे तिनि अधिष्ठान।
महाशक्ति काली मृत्युरूपा, मातृभावे तोरि आगमन॥

'सखार प्रति' कविता का अनुवाद निराला ने किया –

वे हैं मन-वाणी से अज्ञात –

वे ही सुख-दुःख में रहती हैं – शक्ति मृत्युरूपा अवदात मातृभाव से वे ही आतीं। (अनामिका, पृ.१६८) 'नाचूक ताहाते श्यामा' – इनका अनुवाद भी निराला ने किया। इसमें भी स्वामी विवेकानन्द ने मृत्युरूपा काली का स्मरण किया है –

रुद्रमुखे सवाइ डराय,
केह नाहि चाय मृत्युरूपा एलोकेशी।
उष्ण धार, रुधिर-उद्‌गार,
भीम तरवार खसाइये देय खाँसी।
सत्य तुम मृत्युरूपा काली,
सुख वनमाली तोमार मायार छाया।
करालिनि, कर मर्मच्छेद,
होक मायाभेद, सुखस्वप्न देहे दया।

× × ×

रूद्र रूप से सब डरते हैं, देख-देख भरते हैं आह,
मृत्युरूपिणी मुक्तकुन्तला माँ को नहीं किसी की चाह !
उष्णधार उदगार रुधिर का करती है जो बारम्बार,
भीम भुजा को बीन छीनती, वह जंगी नंगी तलवार।
मृत्यु स्वरूपे माँ है तू ही सत्य-स्वरूपा, सत्याधार,
काली, सुख-वनमाली तेरी माया छाया का संसार !

(अनामिका, पृ.११०) ....

निराला ने विवेकानन्द से मृत्युरूपा शक्ति की उपासना सीखी किन्तु कुछ बातों में मौलिक अन्तर के साथ।''

(पृ. ५१३-१४)

बंगाल निराला की जन्मभूमि के साथ कुछ दिनों तक कर्मभूमि भी रहा है, इसलिए यहाँ की प्रकृति, संस्कृति एवं विभूति निराला के रग-रग में समा गयी थी। अतएव यहाँ के सन्तों-महापुरुषों के व्यक्तित्व का भी गहरा प्रभाव दिखाई देता है, जिनमें विशेष रूप से स्वामी विवेकानन्द, श्रीरामकृष्ण और माँ सारदा भी विशेष उल्लेखनीय हैं। इस विषय में डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है – ''निराला ने बंगाल के वैष्णव कवियों को पढ़ा था, उनके कुछ पदों का अनुवाद किया था, उन पर लेख लिखे थे। रीतिवादी

कवियों के नायिका-भेद से इनका शृंगार-भाव उन्हें अधिक अच्छा लगता था, क्योंकि रूपचित्रण के साथ उसमें भाव-विह्वलता भी थी। निराला ने सूरदास को पढ़ा था, 'पन्त और पल्लव' में उनके विराट चित्रों की प्रशंसा की थी, किन्तु कवि रूप में वे राधाश्याम के प्रेमभाव और शृंगार वर्णन से ही अधिक प्रभावित थे। निराला की कुछ रचनाओं में बंगाल के वैष्णव कवियों और सूरदास के प्रभाव घुल-मिलकर एक हो गए हैं।'' (पृ.५३४)

महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का दर्शन स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा से ओतप्रोत है। यही कारण है कि उन्होंने जहाँ 'श्रीरामकृष्णवचनामृत' को पाँच भागों में अनूदित किया, वहीं स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यानों का संकलन भी किया। इस बंगला भाषा से प्रभावित होकर उन्होंने आनन्दमठ, कपालकुंडला, चन्द्रशेखर, दुर्गेशनन्दिनी, कृष्णकान्त का बिल, युगलांगुलीय, रजनी, देवी चौधरानी, विषवृक्ष, राधारानी जैसे अनेक चर्चित बंगला उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया और 'बंगला-हिन्दी शिक्षा' नामक बंगला भाषा सीखने की किताब लिखी। उन्होंने नाटक लिखने एवं मंचन करने की कला बंगाल से ही सीखी थी। उनके ऊपर बंगाल संगीत का गहरा प्रभाव भी था। संगीत सीखने में निराला की जितनी रुचि थी, उतना ही निराला जी अभिनय के प्रति भी शौकीन थे, जिन्हें यह अवसर महिषादल और बंगाल में मिला। इसका इन्होंने अपने नाटकों की भूमिका में उल्लेख किया है कि मैंने गिरीशचन्द्र, डी. एल. राय आदि के बीसों बंगला नाटक पब्लिक स्टेज पर खेले हैं।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में निराला एक ऐसे कवि हैं, जो विश्वकविगुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर से सर्वाधिक प्रभावित हुए हैं। उनके ऊपर अनेक प्रकार के आक्षेप भी लगाए गए। इसी कारण उन्होंने टैगोर की महत्ता स्थापित करने के लिए अपनी एकमात्र आलोचना कृति 'रवीन्द्र कविता कानन' का प्रकाशन करवाया। इस प्रकार रवीन्द्र के प्रभाव को डॉ. रामविलास शर्मा ने व्यास शैली में रेखांकित करते हुए 'निराला की साहित्य साधना' में यत्र-तत्र विस्तारपूर्वक लिखा है – 'रहस्यवाद से अधिक निराला पर रवीन्द्रनाथ की रूमानी कविताओं का प्रभाव है। यह प्रभाव पहले चरण में अधिक है, दूसरे में बहुत कम, तीसरे में नगण्य। निराला ने कुछ कविताएँ रवीन्द्रनाथ की रचनाओं के आधार पर लिखी थीं, जिनकी आलोचना 'भावों की भिड़न्त' लेख में हुई थी।'' (पृ. ५२७)

हिन्दी आलोचकों ने निराला जी के ऊपर रवीन्द्रजी का सदैव प्रभाव माना है, किन्तु रवीन्द्रनाथ के रहस्यवाद का प्रभाव उनकी 'गीतिका' रचना तक ही मानना चाहिए। यद्यपि डॉ. रामविलास शर्मा ने इस ओर संकेत किया है – ''निराला पर रवीन्द्रनाथ के रहस्यवाद का प्रभाव आंशिक रूप से सन् १९३० तक रहता है। उन्होंने अपने प्रियकवि निराला और रवीन्द्रनाथ टैगोर में वैषम्य स्थापित करते हुए दोनों में अन्तर दिखाने की कोशिश की है – ''निराला ने बहुत-सी शब्दावली जिसके लिये छायावाद बदनाम हुआ और उसे बदनाम होना चाहिए था, रवीन्द्रनाथ से ली। 'पंतजी और पल्लव' में उन्होंने रवीन्द्रनाथ की जिन प्रतिध्वनियों का विवरण प्रस्तुत किया, वे उनके काव्य में भी हैं। किन्तु रवीन्द्रनाथ की भाषा, उनका काव्य कौशल, निराला को आंशिक रूप में ही, साहित्यिक जीवन के प्रथम-चरण में, अधिक प्रभावित करता है। भाषा और काव्य-कौशल सिखाने वाले उनके काव्य गुरु और भी हैं। निराला और रवीन्द्र की भाषा में बहुत बड़ा अन्तर समास रचना को लेकर है। कालिदासीय समास-रचना पद्धति निराला में है, रवीन्द्रनाथ में नहीं। इसके सिवा रवीन्द्रनाथ की भाषा अर्थ में सुबोध, निराला की उतनी ही दुरूह है। निराला और रवीन्द्रनाथ के काव्य-कौशल में मौलिक अन्तर है।'' (पृ.५२७)

यद्यपि 'परिमल' में निराला के 'भर देते हो', 'खजोहरा', जागरण गीत, सम्बोधन एवं दार्शनिकता गीतों में 'गीतांजलि' का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। निराला की अनेक रचनाएँ रवीन्द्र कविता की भावभूमि पर रची गई हैं, जिसका स्पष्टीकरण 'भावों की भिड़न्त' लेख में निराला के द्वारा किया गया है। देखा जाए तो १९३६ में प्रकाशित निराला की गीतिका का नामकरण 'गीतांजलि' की शैली में किया गया है। डॉ. रामविलास शर्मा ने अनेक स्थलों की तुलना प्रस्तुत की है और इसके बारे में लिखा है, ''निराला ने प्रत्यक्ष रूप से प्रेरणा लेकर प्रतिस्पर्धा के भाव से जहाँ कविताएँ लिखी हैं, सम्भवत: वहाँ रवीन्द्रनाथ का प्रभाव सबसे हितकर है। उन्हें 'कथा ओ काहिनी' जैसी रचनाएँ बहुत पसन्द थीं, 'सूरदासेर प्रार्थना' जैसी कविताओं के टक्कर की रचनाएँ वे हिन्दी में देखना चाहते थे। 'तुलसीदास' इसी स्पर्धा का परिणाम है। उसका भावबोध, उसका शिल्प 'कथा ओ काहिनी' से भिन्न स्तर

का है। (पृ. ५२८)

निराला की प्रसिद्ध कविता 'बनबेल' में कविता की अप्सरा का सौन्दर्य-ग्रहण रवीन्द्र की उर्वशी से किया है –

सर्वांग कांदिवे तव निखिलेर नयन अघाते वारि बिन्दु पाते ॥ रवीन्द्र ॥

× × ×

जैसे पार कर क्षीर सागर
अप्सरा सुधर
सिक्त तन केश, शत लहरों पर
काँपती विश्व के चकित दृश्य के दर्शन शर ॥ निराला ॥

'नयन मुदिया सुनिगो, जानिना' रवीन्द्र के गीत में भारत भारती के बिम्ब को निराला ने कैसे अभिव्यक्त किया है –

भारतेर श्वेत-हृदि-शतदले,
दाँड़ाये भारती तव पदतले ॥ रवीन्द्र ॥
मुझे देख तू सजल दृगों से
अपलक, उर के शतदल पर ॥ निराला ॥

रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'विजयिनी' गीत से निराला ने अपने शोकगीत – 'सरोजस्मृति' में भोगावती का प्रसंग एवं भाव इस प्रकार ग्रहण किया है –

अंगे-अंगे यौवनेर तरंग उच्छल,
लावण्येर मायामंत्रे स्थिर अचंचल ॥ – रवीन्द्र

× × ×

पर बँधा देह के दिव्य बाँध
छलकता दृगों से साध-साध। – निराला

रवीन्द्रनाथ टैगोर की अग्रलिखित कविता –

'लेगेछे अमल धवल पाले मन्द मधुर हावा

देखिनाई कभु देखि नाइ एमन तरणि बाबा।' को निराला ने अपने भावों के माध्यम से परिमल में कैसे उतारा है – **डोलती नाव, प्रखर है धार,**

संभालो जीवन-खेवनहार।

ऐसे ही रवीन्द्र के एक गीत की कल्पित वेदना के कलात्मक छन्द –

तोमार सोनार थालीय साजाबो आज दुखेर अश्रुधार।

जननी गो, गाँथबो तोमार गलार मुक्ताहार।' को अपनी भाव-भाषा में पिरोते हुए निराला ने लिखा है –

देवि तुम्हें मैं क्या दूँ?
क्या है, कुछ भी नहीं, ढो रहा व्यर्थ साधना भार,
एक विफल रोदन का है यह द्वार, एक उपहार;
भरे आँसुओं में हैं असफल कितने विफल प्रयास,
झलक रही है मनोवेदना, करुणा, पर-उपहास;
क्या चरणों पर ला दूँ?
और तुम्हें मैं क्या हूँ?

निरालाजी, भावों को आत्मसात कर जिस प्रकार अपनी रचनाओं में सौन्दर्य एवं बिम्बों को उतारते हैं, वह उत्कृष्ट रचनाकार की सिद्धता है। क्योंकि रवीन्द्रनाथ टैगोर की भाव-भावना एवं सौन्दर्य-चेतना की गहरी पैठ निराला में स्थिर हो गई थी, जिसे हम अग्रलिखित छन्दों में प्रतिबिम्बित पाते हैं –

एत कथा आछे, एत गान आछे, एत प्राण आछे मोर,
एत सुख आछे, एत साध आछे, प्राण हये आछे भोर।
की जानि की होलो आजि, जागिया उठिल प्राण,
दूरे होते शुनि येन महासागरेर गान।
औरे चारिदिके मोर ए की कारागर घोर,
भाङ् भाङ् भाङ् कारा, आघाते आघात कर।
ओरे आज की गान गेयेछे पाखि, एसेछे रविरकर !
– रवीन्द्र

× × ×

बहने दो, रोक-टोक से कभी नहीं रुकती है,
यौवन मद की बाढ़ नदी की किसे देख झुकती है?
गरज-गरज वह क्या कहती हैं, कहने दो,
अपनी इच्छा से, प्रबल वेग से बहने दो ॥ – निराला

रवीन्द्र के प्रभाव को आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'निराला काव्य भाषा' में स्पष्ट सिद्ध किया है कि निराला की काव्य भाषा के स्त्रोत एक ओर संस्कृत कवि जयदेव हैं, तो दूसरी ओर तुलसी और तीसरी ओर रवीन्द्र हैं। इस तथ्य को अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है – 'रवीन्द्रनाथ की काव्य भाषा की विशेषताएँ भी निरालाजी के द्वारा अपनाई गई हैं। विशेषत: भाषा के द्वारा व्यंजित होने वाली सांगीतिक ध्वनियों और अनुप्रास तथा यमक को उन्होंने रवीन्द्र के आधार पर सज्जित किया है। मुक्त छन्द

में दूर-दूर तक चलने वाली तुकान्तहीन रचना में अनेक ऐसे स्थल आए हैं, जहाँ एक प्रकार का तुकान्त मिलता है। 'जागो फिर एक बार' का तुक 'जहाँ आसन है सहस्त्रार' ही में दिखाई देता है। इस प्रकार के प्रयोग रवीन्द्र की कविता में विशेष रूप से देखे जाते हैं।' (निराला कवि छवि, पृ.४८)

स्वामी विवेकानन्द की अग्रलिखित पंक्ति को निराला जी ने 'अनामिका' में अत्यन्त कौशलपूर्वक ग्रहण किया है –

'मेघ मन्द्रकुलिश निस्वन, महारण, भूलोक-द्युलोक-व्यापी।
अन्धकार उगरे आँधार, हुहुँकार श्वसिछे प्रलय वायु॥'

× × × ×

अन्धकार उदगीरण करता, अन्धकार घनघोर अपार।
महाप्रलय की वायु सुनाती, श्वासों में अगणित हुँकार॥

निराला ने अपनी 'राम की शक्ति पूजा' रचना में प्रसिद्ध पंक्ति – 'है अमानिशा उगलता गगन घन अन्धकार' उक्त छन्द से ग्रहण की है। यद्यपि निराला को महाकाव्यात्मक गरिमा दिलाने वाली 'राम की शक्ति पूजा' ही है। जिसका सम्पूर्ण कथानक, विषयवस्तु, प्रसंग आदि बंगला साहित्य के कालजयी साहित्यकार कृत्तिवास की अमरकृति 'कृत्तिवासी रामायण' से गृहीत है।

आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री ने 'राम की शक्ति पूजा' का 'तुलनात्मक विवेचन' के प्रारम्भ में लिखा है – 'निराला की सुप्रसिद्ध एवं अत्यन्त उत्कृष्ट कविता 'राम की शक्ति पूजा' कृत्तिवासी रामायण के एक प्रसंग पर आधारित होते हुए भी उसी प्रकार एक मौलिक रचना है, जिस प्रकार कालिदास कृत 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' महाभारत के आदि पर्व में वर्णित 'दुष्यन्त-शकुन्तला' के आख्यान पर आधारित होते हुए भी मौलिक कृति है। ... निराला ने कच्चे उपादान के रूप में कृत्तिवास द्वारा वर्णित 'राम की शक्तिपूजा' की कथा का उपयोग कर उसे अपने युग की चुनौतियों का योग्य प्रत्युत्तर देने वाली परिणत कालाकृति का रूप दे दिया है।'' (डॉ. नन्दकिशोर नवल, सम्पादक - 'निराला : कवि छवि', पृ.१४८) उन्होंने पुन: इसके प्रति लिखा है कि निराला की 'राम की शक्ति पूजा' 'कृत्तिवासी रामायण' के उपर्युक्त प्रसंग पर आधारित होते हुए भी आधुनिक कविता है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि निराला के चित्त पर कृत्तिवास के साथ-साथ वाल्मीकि, तुलसी आदि का भी जबर्दस्त प्रभाव है। निराला का अपना व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन भी इस पूरी कविता में ओत-प्रोत है। अत: यह कविता कई स्तरों पर कृत्तिवास की रचना से बहुत भिन्न हो गई।'' (वही, पृ.१५३)

नि:सन्देह सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' हिन्दी साहित्य के महनीय महाकवि हैं, जिनको बनाने सँवारने में बंगला साहित्य और रवीन्द्रनाथ टैगोर की अप्रतिम प्रेरणा है। निराला के काव्य की महिमा-गरिमा उनके काव्य सृजन की प्रक्रिया से बनी है। साहित्यकार अपने युग, परिवेश, संस्कृति के उत्कर्षापकर्ष का सन्निवेश करते हुए कालजयी कृतियों के सृजन में तल्लीन होता है और अपनी अथक दीर्घावधि-साधना के उपरान्त समाज और देश को अमूल्य थाती के रूप में यह अमर कृति उपहार में प्रस्तुत करता है। ○○○

बोधकथा

योग्यता की परख

बात पुरानी है। बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार हो चुका था। एक बड़े बौद्ध संघाराम के लिये योग्य कुलपति की नियुक्ति होनी थी। चयन का दायित्व प्रसिद्ध आचार्य मौद्गल्यायन को सौंपा गया। कुलपति के पद हेतु अनेक प्रतिनिधि वहाँ पहुँचे, उनमें से तीन का चयन हुआ। किन्तु कुलपति एक को ही बनना था। अत: योग्यतम के चयन हेतु उनकी अन्तिम परीक्षा लेनी आवश्यक थी। आचार्य ने तीनों की परीक्षा हेतु उन्हें एक जंगल में बुलाया। स्वयं मौद्गल्यायन ने उनसे पहले ही वहाँ पहुँचकर मार्ग में काँटे बिछवा दिए। सन्ध्या तक तीनों विद्वान भी निर्धारित स्थान तक पहुँच गए। जैसे ही जंगल में प्रवेश करने लगे, वहाँ काँटे देखकर वे रुक गए। एक ने अपना मार्ग बदल दिया। दूसरा काँटे पर से कूदकर आगे बढ़ गया। तीसरे आचार्य काँटे हटाने लगे। जब सारे काँटे चुन लिए, तभी वे आगे बढ़े। इसमें बहुत देर हुई, इसलिए वे सबसे अन्त में पहुँचे। मौद्गल्यायन को सारी घटना ज्ञात हो चुकी थी। अत: उन्होंने तीसरे प्रतिनिधि को कुलपति घोषित कर दिया। उन्होंने कहा, संघाराम में सत्प्रवृत्तियों की परम्परा वही डाल सकता है, जो अपने ही नहीं, दूसरों के मार्ग की बाधाएँ हटाने में भी सक्षम हो। (प्रस्तुति : रजनी शर्मा)

साधक-जीवन कैसा हो? (१२)

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

(ईश्वरप्राप्ति के लिये जिज्ञासु साधना में प्रयत्नशील रहते हैं। किन्तु प्राय: वे उन चीजों की उपेक्षा कर देते हैं, जिन छोटी-छोटी चीजों से साधक-जीवन ईश्वर की ओर अग्रसर होता है। एक साधक का जीवन कैसा होना चाहिये और उसे अपने जीवन में किन-किन चीजों का ध्यान रखना चाहिये, इस पर विभिन्न दृष्टिकोणों से इस व्याख्यान में चर्चा की गयी है। प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने मार्च, २०११ को रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर के आध्यात्मिक शिविर में दिया था। विवेक-ज्योति के पाठकों हेतु टेप से अनुलिखन नागपुर की सुश्री चित्रा तायडे और कुमारी मिनल जोशी ने तथा सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

शुद्ध मन ही गुरु होता है। ये उपाय हमारे मन या चित्त की शुद्धि के लिये हैं। विलासिता से हम बचेंगे तो हमारे जीवन में अहंकार की निवृत्ति होगी। आप स्वयं विचार करके देख लें। मैंने आपको घड़ी के उदाहरण से समझाया था। आवश्यकता और विलासिता को ठीक से समझकर अपने साधक जीवन की ओर अग्रसर हों। अहंकार हमारे जीवन की बहुत बड़ी बाधा है। विलासिता अहंकार से आती है। अहंकार की तृप्ति और पुष्टि के कारण जीवन में विलासिता आती है। साधक-साधिका को विलासिता से बचना चाहिये। विलासिता से बचेंगे, तो विलासिता जनित अहंकार अपने आप तिरोहित हो जाएगा और सहजता प्रतिष्ठित हो जाएगी। सहज भाव से सहज होंगे, तो तनाव मुक्त रहेंगे। तनाव मुक्त होंगे, तो मन शान्त होगा और समय मिलेगा। समय उपलब्ध होगा, तो भजन होगा। ये सभी गणित के समान है। ये सारी प्रक्रिया साथ-साथ चलने वाली हैं। इन कल और आज के ४ व्याख्यानों में हम लोगों ने ये देखने का प्रयास किया है कि साधक के जीवन में किस प्रकार की भावनाएँ होनी चाहिये। क्योंकि भावनाओं से व्यवहार होता है। अब साधक को क्या करणीय है, क्या करना चाहिये? इसकी चर्चा कल होगी धन्यवाद !

प्रवचन - ४

वन्दनीया माताओ और सुहृद भक्तवृन्द आज इस चर्चा का दूसरा दिवस और दूसरा सत्र है और विषय है साधक और साधिका का जीवन कैसा हो? कल इस विषय पर चर्चा हुई थी। हमने व्यक्तित्व के दो आयामों बहिर्मुखी व्यक्तित्व और अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के बारे में जाना था। बहिर्मुखी व्यक्तित्व पर पिछले प्रवचन में विशेष चर्चा हुई थी। अन्तर्मुखी व्यक्तित्व पर भी थोड़ी चर्चा हुई थी। आपके सामने यह विचार रखा गया था कि साधक या साधिका को अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करना आवश्यक होता है।

जब तक दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं होगा, तब तक साधना सफल नहीं होगी, साधक का जीवन व्यवस्थित नहीं हो पाएगा। कैसे दृष्टिकोण में परिवर्तन से जीवन में परिवर्तन हो जाता है, इसे एक उदाहरण से समझें। एक व्यक्ति गृहस्थ है। उसकी एक पुत्री है, वह पिता के साथ घर पर रहती है। पढ़ती-लिखती है। जब विवाह योग्य होती है, तब उसका विवाह कर दिया जाता है। विवाह होते ही उसके दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन हो जाता है। अब वह कन्या से पत्नी हो गयी। पत्नी होते ही उसके जीवन के व्यवहार की दिशा बदल जाती है। उसकी चेतना में परिवर्तन हो जाता है। वह सोचती है – हाँ, अब मैं पत्नी हूँ। यथासमय वह माँ होती है। हमें यह ध्यान रखना चाहिए, जिसकी ओर ध्यान नहीं जा पाता है कि जिस दिन उसकी प्रथम संतान होती है, उस दिन से उसके बच्चे के जन्म के साथ-साथ उसमें मातृत्व का भी जन्म होता है। उसके पूर्व वह माँ नहीं, केवल पत्नी थी। किन्तु सन्तान के जन्म लेते ही उसकी चेतना में भी परिवर्तन हो जाता है। कम-से-कम इस जीवन में कभी भी उसकी चेतना में यह परिवर्तन नहीं हो सकता कि वह माँ नहीं है।

साधक और साधिका की चेतना में भी इसी प्रकार का परिवर्तन होना चाहिए। किन्तु सदैव ऐसा नहीं हो पाता। प्रयत्नपूर्वक सत्संग के द्वारा, बार-बार विचार के द्वारा, प्रार्थना आदि के द्वारा वह मन में यह निश्चय करे कि मैं एक साधक हूँ, मैं एक साधिका हूँ। जिस प्रकार कुँवारी कन्या विवाह के पश्चात सदैव अहर्निश कहीं भी जाएँ, गहरी से गहरी नींद से सोकर उठे, तो भी उसको ज्ञात,

आभास रहता ही है कि मैं पत्नी हूँ, मैं माँ हूँ। उसी प्रकार साधक-साधिका के मन में भी यह दृढ़ हो जाय कि वे साधक-साधिका हैं। इस प्रकार के दृढ़ निश्चय से धीरे-धीरे हमारे स्वभाव में परिवर्तन आयेगा।

कैसे परिवर्तन होगा? साधक-साधिका का जीवन कैसा होना चाहिए, जब हम इस विषय में सोचते हैं, तब स्वयं के व्यवहार को नियन्त्रित करने की एक प्रेरणा हमें भीतर से मिलती है। वह कैसे मिलती है? जैसे एक सती को, पतिव्रता स्त्री को अपने जीवन को व्यवस्थित करने की प्रेरणा मिलती है। अपने पति से भिन्न सभी पुरुष को वह पिता, भाई या पुत्रवत् देखती है, उसी प्रकार साधक या साधिका धीरे-धीरे अपने अन्तःकरण में इस भाव को दृढ़ कर लेते हैं वे साधक हैं। तब उनके जीवन के पुराने अशुभ संस्कारों को क्रियान्वित करने के पहले उनकी चेतना जाग उठती है – अरे मैं ऐसा कैसे कर सकती हूँ? कोई भी अनुचित कार्य जो साधना के प्रतिकूल हो, उसको करने के पहले उसके मन में चेतना जागेगी कि यह मेरे लिए उचित नहीं है। जैसे आपको कल बताया था कि श्रीरामकृष्ण देव के पिता क्षुदिरामजी के मन में यह बात आयी, मैं झूठी गवाही नहीं दे सकता। इसी प्रकार जब हम धीरे-धीरे यह धारणा दृढ़ कर लेते हैं कि मैं भक्त हूँ या मैं साधक हूँ, तो हमसे अनुचित कार्य नहीं होगा। साधना या सत्संग करने के पूर्व हमारे जो अशुभ संस्कार थे, वे चले जाएँगे। मन में अच्छे विचार आने लगेंगे। अच्छा संस्कार बनने लगेगा। व्यक्ति के परिवर्तन की और घटना आपको बतात हूँ।

मेरे एक मित्र हैं। वे भी वृद्ध हो गये हैं। बहुत वर्ष पहले की बात है। वे घी का व्यवसाय करते थे। बड़े ईमानदार थे। वे बहुत ही अच्छी किस्म का शुद्ध घी बाहर से मँगाकर बेचा करते थे। इतने ईमानदार थे की हमेशा नगद देकर ही घी खरीदा करते थे। दूसरे जो घी के बड़े व्यापारी थे, उन्होंने सोचा कि ऐसा कौन हमारा ग्राहक है, जो हजारों रुपये, कभी-कभी लाखों रुपये पहले देकर घी खरीद लेता है। उस बड़े व्यापारी ने अपने एक एजेण्ट से कहा – तुम जाकर उनसे मिलकर कहो कि वे अपना व्यापार बढ़ाएँ। उन्हें पहले नगद रूपए देने की जरूरत नहीं है। हम उन्हें ५ लाख रुपयों तक का घी उधार दे सकते हैं। कम्पनी के एजेण्ट ने इनके पास आकर पूछा – क्या आप अमुक व्यक्ति हैं? इन्होंने हाँ कहा। क्या आप हमारी कंपनी का घी लेते हैं? हाँ लेते हैं। पहले पैसा देते हैं? हाँ, पहले पैसा जमा कर देता हूँ। एजेण्ट ने कहा कि मुझको मेरे मालिक ने इसलिए भेजा है, आप अपना व्यापार बढ़ाएँ। आपको तुरन्त रुपये देकर घी लेने की आवश्यकता नहीं है। यदि आप ५ लाख का भी घी खरीदें, तो ३-४ महीने बाद माल बिकने पर पैसा दें। जितना आप चाहें, उतना घी हम आपको हर महीने भेज सकते हैं। यह कहकर एजेण्ट लौट गया। घी विक्रेता से हमारी पुरानी मित्रता है। मैं कहीं बाहर गया था। जब लौट के आया, तो आने पर पता लगा, आपके अमुक एक मित्र आपसे दो बार मिलने आये थे। उन्होंने कहा कि कुछ जरूरी काम था।

मैं उनके यहाँ गया। उन्होंने कहा, तीन-चार दिन से मेरा मन बड़ा खराब है। मैंने कहा, आप इतने सज्जन व्यक्ति हैं। क्या हो गया आपको? उन्होंने बताया – घी कम्पनी के मालिक का एजेण्ट आया था। उसने मुझसे कहा – आप जितने टिन, १०-१५ हजार टिन, चाहे जितने रुपये का भी हो, जितना चाहे लें, हर महीने-दो-महीने में लें, आपको हम बिना अग्रिम राशि के दे देंगे। आपको एक वैगन घी भी भेज सकते हैं। तब से मेरा मन खराब है। क्या उनके देश में घी की नदी बहती है? वह कैसे इतना घी भेज देगा? मुझे लगता है कि जरुर इसमें कुछ मिलावटी घी देगा और मुझे इसका पाप लगेगा।

वे राम के बड़े भक्त हैं। रामायण सुनते हैं। बड़े सज्जन व्यक्ति हैं। देखिए उन्हें लाभ का कितना अवसर था ! यदि वे चाहते तो, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश में, कहीं भी घी का बहुत बड़ा व्यवसाय फैला सकते थे, बहुत पैसा कमा सकते थे। पर उन्होंने कहा, महाराज आप तो जानते हैं, मैं भगवान राम का भक्त हूँ, यह तो धोखा है। मेरी भक्ति में दाग लगेगा। यदि मैं नगद भी खरीदूँ, तो भी मिलावट जरूर है। इतना घी कहाँ से आता है? मैंने सोच-विचार कर यह निर्णय लिया कि अब मैं यह व्यवसाय नहीं करूँगा। उन्होंने वह व्यवसाय छोड़ दिया। अब वे आयुर्वेदिक दवाओं का व्यवसाय करते हैं। अपने दामादों को धीरे-धीरे व्यवसाय में लगा दिया है और वे भजन में लगे रहते हैं। उनके दृष्टिकोण के परिवर्तन में इतनी तीव्रता थी। **(क्रमशः)**

कालीतत्त्व

स्वामी विनिर्मुक्तानन्द
रामकृष्ण मठ, कोची

(गतांक का शेषांश)

श्मशानकाली : तन्त्रसार में इस काली का वर्णन प्राप्त होता है। माँ श्मशानवासिनी हैं। कापालिक, भैरवी, तान्त्रिक और शवसाधनरत साधकगण माँ के श्मशानकाली के रूप का ध्यान करते हैं। माँ भीषणा, उग्रा, भयंकरा मूर्ति में विराजमान हैं। माँ का शरीर घोर कृष्णवर्ण का, रक्ताभ नेत्र, बिखरे हुए केश, शुष्क देह और पिंगल नयन हैं। उनके वाम हस्त में पानपात्र और दक्षिण हस्त में सद्यच्छिन्न नरमुंड हैं। माँ हास्यवदना, दिगम्बरी, सुरापान से मदमत्त और नाना अलंकार से विभूषिता हैं। भयंकर रूप होने के बावजूद माँ हमेशा संतान-मंगलाकांक्षी हैं। भगवान श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, 'श्मशानवासिनी देवी का चित्र गृहस्थ के घर में रखना अमंगलदायक है।'

गुह्यकाली : चामुण्डातन्त्र में गुह्यकाली का अति सुन्दर वर्णन प्राप्त है। गुह्यकाली साधना जगत का अति गोपनीय विग्रह है। ये देवी भीषण हैं, उनका गात्र घोर श्यामवर्ण का, परिधान में कटि मात्र आच्छादित काले वस्त्र हैं। माँ की श्वेत दन्तराशि विकट दृष्टिगोचर होती है। माँ के चक्षुद्वय कोटरगत हैं, वे सदा हास्यरता हैं, उनके कण्ठ में पचास नरमुण्ड की माला और सर्प का यज्ञोपवीत है। त्रिनयना देवी के शिर पर जटा, उसके ऊपर अर्ध-चन्द्रावेष्टित सहस्त्र नाग का मुकुट है। देवी का आसन कुंडली कृत दो सर्प हैं। देवी का कटिबन्ध भी सर्पाभूषण से अलंकृत है। सर्पराज तक्षक और नागराज दोनों हाथों में कंगन के रूप में शोभित हैं। चरण में सर्प के नूपुर और दोनों कानों में दो शिशु के मृतदेह हैं। देवी के दो हाथों में वराभय मुद्रा है। माँ आसव पान से भावोन्मत्ता, अट्टहासमयी और सभी भक्तों को अभीष्ट प्रदान करती हैं।

भद्रकाली : शक्ति उपासकों की बहुल प्रचलित आराध्यदेवी हैं भद्रकाली। देवी भगवती ने इसी रूप में कई बार लीला की है। 'भद्र' अर्थात् मंगल और 'काल' का अर्थ है अंतिम समय। अर्थात् जीवों को अंतिम काल में जो मंगल प्रदान करती हैं, वही हैं भद्रकाली। दक्ष-यज्ञ विनाश के समय महादेव की जटा से भैरव वीरभद्र की उत्पत्ति हुई और देवी भगवती की कोपाग्नि से देवी भद्रकाली उत्पन्न हुई थीं।

''दक्षयज्ञ विनाशिन्यै महाघौरायै योगिनीकोटिपरिवृत्तायै। भद्रकाल्यै ह्रीं ॐ दुर्गायै नमः ।।'

इसी देवी ने कोटियोगिनी परिवेष्टिता होकर दक्ष यज्ञ का विनाश किया था। कालिका पुराण के मतानुसार सृष्टि के आदि में देवी भगवती ने उग्र चंडी के रूप में अष्टादश भुजावाली होकर महिषासुर का वध किया था। इसी पुराण में भद्रकाली के अवयव के बारे में विस्तृत वर्णन है। माँ के गात्रवर्ण अतशी फूल के समान है। मस्तक जटाजूट और अतीव-सुन्दर मुकुट से शोभित है। ललाट अर्धचंद्र, कण्ठ रत्नहार और नागपाश से सुशोभित है। षोडशभुजा में बहु तीक्ष्णधार अस्त्र-शस्त्र में माँ सुसज्जित हैं। माँ सिंहवाहिनी ने वामचरण में महिषासुर को दबाकर त्रिशूल से असुर का वक्ष-भेद किया। तंत्रसार के अनुसार यही भद्रकाली काली रूप में पूजिता है।

सिद्धकाली : कालीतंत्र में इस देवी के बारे में उल्लेख है। माँ द्विभुजा, दक्षिण हस्त में खड्ग लिए हुए हैं, इसी खड्गाघात में चंद्र के शरीर से अमृत धारा बहाकर माँ स्नान कर रही हैं। वाम हस्त में कटोरी है। इसी कटोरी में संचित अमृत सुधा का माँ पान कर रही हैं। देवी त्रिनयना, मुक्तकेशी, दिगम्बरी है, नीलकमल के समान माँ का गात्रवर्ण है। वाम चरण शिव के हृदय के ऊपर और दक्षिण चरण शिवजी के दोनों चरण के बीचोबीच है। देवी साधकों को सिद्धि प्रदान और अभयदान देती है। इसीलिए देवी का नाम हुआ सिद्ध काली।

आद्याकाली : महानिर्वाण तंत्र में हमें आद्याकाली का वर्णन मिलता है। देवी का गात्रवर्ण गाढ़ा नीला है, ललाट में चंद्र रेखा है, देवी त्रिनेत्रा, रक्तरंजित वस्त्रा और द्विभुजा हैं। दोनों हाथ में वर और अभयमुद्रा है। महादेव देवी के इस रूपदर्शन में विभोर होकर नृत्य कर रहे हैं। देवी भी यह नृत्य देखकर मुग्ध नयन में आनन्द विह्वल हो रही हैं। आद्यकाली का साधकगण प्रसन्न चित्त से ध्यान करते हैं।

चामुण्डा काली : कालिकापुराण, मार्कंडेयपुराण और देवी भागवत में चामुण्डाकाली के विषय में विस्तृत वर्णन है। चामुण्डा काली की पूजा दुर्गापूजा के अन्तर्गत होने

वाली सन्धिपूजा के समय होती है। इस देवी के आविर्भाव की कहानी सुविज्ञात है। शुम्भ-निशुम्भ का वध करने हेतु देवताओं ने देवी की स्तुति की। इससे प्रसन्न होकर देवी ने अपने शरीर कोष से एक अपूर्वरूप लावण्यमयी देवी का रूप प्रकट किया। वे देवी 'कौषिकीदेवी' के नाम से जानी जाती हैं। देवी की अतुलनीय रूपमाधुरी को देखकर शुम्भ-निशुम्भ के अनुचर चण्ड-मुण्ड मोहित हो गए। जब मोहाविष्ट चण्ड-मुण्ड देवी को पकड़ने हेतु अग्रसर हुए, तब देवी इतनी क्रोधित हो गईं कि क्रोधाग्नि से प्रज्ज्वलित होकर काली पड़ गईं। देवी के इस क्रोधाविष्ट भृकुटि ललाट से एक करालवदना, असि और पाशधारिणी भयंकरी देवी का आविर्भाव हुआ। इस देवी का गात्रवर्ण नीलकमल के समान है। देवी चतुर्भुजा, दक्षिण भाग के ऊपर के हाथ में नर-मुण्ड समन्वित एक दंड, निचले हाथ में चन्द्रहास अस्त्र है। वाम भाग के ऊपरवाले हाथ में ढाल और निचले हाथ में पाश है। परिधान में व्याघ्रचर्म, अतीव दुबली देह, अस्थि-चर्मसार, विकट दन्तराशि, कोटरगत घोर रक्तवर्ण चक्षु, रक्ताक्त जिह्वा है। देवी का आसन है एक मुण्डहीन असुर का मृतदेह। इसी विकटदर्शना देवी ने चण्ड-मुण्ड का वध करने के पश्चात् दोनों के छिन्नमुण्ड देवी कौषिकी को उपहार में दिए। तब देवी कौषिकी ने प्रसन्न होकर कहा, 'मेरा ही अंशभूत होने के बावजूद तुमने चण्ड-मुण्ड का वध करके मुझे प्रसन्न किया, इसीलिए आज से तुम्हरा नाम चामुण्डा देवी होगा। दुर्गापूजा के अष्टमी और नवमी तिथि में देवी चामुण्डा की पूजा होती है। अग्निपुराण में अन्य आठ प्रकार की चामुण्डा काली का नाम मिलता है।

अभिनवगुप्त के तन्त्रालोक और तन्त्रसार ग्रंथ में चामुण्डा काली के तेरह प्रकार के नाम और उनके ध्यानमन्त्र भी मिलते हैं। यथा सृष्टिकाली, स्थितिकाली, संहारकाली, रक्तकाली, स्वकाली, यमकाली, मृत्युकाली, रुद्रकाली, परमार्थ काली, मार्तंडकाली, कालाग्निरुद्र काली, महाकाली और महाभैरवघोरचण्डी काली।

इसके अतिरिक्त बंगाल में अन्य अनेक काली के नाम हमें मिलते हैं, जिनका शास्त्र में उल्लेख नहीं मिलता।

देवी के अंग-प्रत्यंग – देवी काली का वर्ण और अंग-प्रत्यंग भी विशेष तात्पर्य वाले हैं। पंडितों ने देवी के अंग-प्रत्यंग के बारे में शास्त्रादि में विशद चर्चा की है।

शरीर-वर्ण : देवी घोर कृष्णवर्णा हैं। श्वेत, कृष्ण, नील और पीत, इत्यादि रंगों को सम्मिश्रित करने से काला ही हो जाता है। विश्वचराचर की सभी वस्तुएँ जब इसी अचिंतनीय, अव्यक्तादि प्रकृति में लीन होकर एकीभूत हो जाती हैं, तब चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि कुछ भी नहीं रहते। तमोमयी आदि अवस्था के कारण माँ के शरीर का वर्ण काला है – **'सृष्टेरादौ त्वमेकासीत् तमोरूपम् अगोचरम्'**। पर साधकों की दृष्टि में माँ का रंग काला नहीं है। रामप्रसाद कहते हैं, "माँ कि आमार कालो रे, लोके बोले काली कालो, आमार मन तो बोले ना कालो रे।" अर्थात् क्या मेरी माँ काली है? लोग कहते हैं कि काली काले वर्ण की हैं, लेकिन मेरा मन तो काला नहीं मानता है। ठाकुर श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, 'दूर में है इसीलिए काला है, आकाश दूर से नीला दीखता है, पर वास्तव में कोई रंग ही नहीं है। समुद्र का पानी दूर से नीला दिखता है, पर हाथ में उठाकर के देखो तो कोई रंग नहीं है। माँ **करालवदना** हैं। क्योंकि संहारकर्त्री माँ के प्रलयकाल में समग्र विश्वब्रह्माण्ड उनके कराल मुख में लय हो जाते हैं। सारी सृष्टि का ग्रास करने के कारण ओष्ठ से रक्त की धारा बह रही है।

माँ **मुक्तकेशी** हैं। अर्थात् विलासहीन निर्विकार हैं। खुला केश गति का प्रतीक है। माँ की गति अबाध है। माँ जीव को माया-बंधन में बांधती और मुक्त भी करती हैं। क–ब्रह्म, अ–विष्णु, ईश–महेश, अर्थात् माँ इन त्रिदेवों की भी मुक्तीदात्री हैं, इसीलिए मुक्तकेशी हैं। देवी **चतुर्भुजा** हैं। वामहस्त में खड्ग है। निष्काम साधकों के मोहपाश को माँ उसी ज्ञान-असि से काटती हैं। दूसरे हाथ में छिन्नमस्तक है, जो मोहपाशमुक्त तत्त्वज्ञान का आधार है। करुणामयी माँ साधकों को मुक्ति प्रदान करने के लिए सदा तत्पर रहती हैं। इसलिए ज्ञानखड्ग से बंधनमुक्त कर अपने अभयहस्त में आश्रय देती हैं। दाहिने दोनो हाथों में माँ संतान को संसार की यंत्रणा से मुक्त करने के लिये अभय और वरदान देती हैं। एकाधार में माँ भंयकरी और दूसरी ओर करुणाघनमूर्ति हैं।

देवी के गले में रक्तरंजित **पचास नरमुण्डों की माला** है। सिर मनुष्य की बुद्धि का स्थान है। मृत्यु के बाद भक्तों को शुभ बुद्धि देने के लिए माँ ज्ञानरूपी मुण्ड को अपने हृदय में धारण करती हैं। दूसरे अर्थ में मुण्डमाला पचास वर्णो का प्रतीक है। काली पंचाशत वर्णमयी हैं। वर्णमाला सर्वशास्त्रादि का शब्दसृष्टि का मूल है। वर्ण से शास्त्रादि

प्रकाशित होते हैं। वर्ण के बिना शास्त्रादि अप्रकाशित रह जाता। इसलिए माँ आदि तत्त्वमयी हैं। माँ **दिगम्बरी** हैं। जो सर्वव्यापी भूमास्वरूपिणी हैं। उनको कौनसा वस्त्र आवृत्त कर सकता है? दशों दिशाएँ माँ के आवरण हैं। माँ सर्वबन्धनहारिणी हैं, इसीलिए दिगम्बरी हैं। देवी के दोनों कानों में दो मृतशिशु के **कर्णाभरण** हैं। कहते हैं कि शिशुवत्, सरल, शुद्ध तत्त्वज्ञ साधक देवी को सर्वप्रिय हैं। उनकी प्रार्थना माँ पहले पूर्ण करती हैं।

माँ की **रक्तमय जिह्वा** है। रक्तवर्ण रजोगुण का प्रतीक है और श्वेतदन्तपंक्ति सत्त्वगुण का। रजोगुण को माँ श्वेत दन्त सत्त्वगुण से दमन करती हैं। माँ का **उन्नत वक्षस्थल** विश्वमातृत्व का प्रतीक है। संतान को स्नेहपीयूष धारा से परितृप्त कर तत्त्वज्ञान में प्रतिष्ठित करने के लिये माँ सदा तत्पर रहती हैं। माँ की **कमर** नरकरों से आवृत है। जीव देहत्याग के बाद पुनर्जन्म तक सूक्ष्म शरीर में माँ के विराट शरीर में ही आश्रय लेता है। हाथ जीव की क्रियाशक्ति का प्रतीक है। देवी ने संतान को कर्म के अनुसार फल प्रदान करने के लिए हाथ को अपनी कमर का आभूषण बनाया है। देवी **त्रिनयना** हैं। सूर्य, चन्द्र और वह्निरूप त्रिनेत्र से माँ स्वर्ग, मर्त्य और पाताल, भूत, वर्तमान और भविष्य, सब कुछ दर्शन करती हैं, अर्थात् माँ त्रिकालज्ञ हैं। माँ शिवासना हैं। शवरूपी शिव के ऊपर खड़ी हैं। शिव निष्क्रिय पुरुष है इसलिए शवाकार है। माँ नित्य सक्रिय आदि प्रकृति हैं। पुरुष प्रकृति के अधीन है। इसीलिए शिवजी माँ के पदतल में सोए हुए हैं। आचार्य शंकर कहते हैं, 'शक्ति के बिना शिव स्पंदनरहित है।' इसीलिए शिव शवरूप में नीचे शयित होकर, ऊर्ध्वमुख होकर, माँ की कृपादृष्टि की प्रतीक्षा करते हैं।

देवी **श्मशानवासिनी** हैं। श्मशान जीव के कर्मभोग का अन्तिम विश्रामस्थल है। श्म-मृत शरीर और शान-शयन, जीव का सब कुछ हरण करने के बाद प्रलयकाल में सब कुछ माँ के शरीर में लय हो जाता है। तब समग्र संसार महाश्मशान में बदल जाता है। वही महाश्मशान माँ का एकमात्र वासस्थान होता है। पंचभौतिक शरीर क्षणभंगुर है। इसी तत्त्व के धारणार्थ माँ श्मशानवासिनी हैं। महानिर्वाण तन्त्र माँ की स्तुति में कहता है, 'हे माँ जगदम्बा, यह अखिल विश्व तुम्हारी सृष्टि है। सभी कारणों का कारण सच्चिदानन्द परब्रह्म केवल निमित्त मात्र है। तुम्ही आदि, अनन्त हो और शेष सभी निमित्त मात्र हैं –

निमित्तमात्रं तद्ब्रह्म सर्वकारणकारणम्।
सर्वप्राणि-हितकरम् भोगमोक्षैक कारणम्।
विशेषतः कलियुगे जीवानामाशु सिद्धिदम्।(महानिर्वाण तन्त्र, ७.५)

परा प्रकृति महाकाली की साधना से समस्त जीव भोग और मोक्ष के अधिकारी बनते हैं। इसीलिए काली-साधना सबके लिए हितकारी है। विशेषत: कलियुग में काली-साधना से ही सिद्धि प्राप्त होती है। इसी तन्त्र में भगवान शिव स्वयं कहते हैं –

ब्रह्मज्ञानं अवाप्नोति श्रीमदाद्याप्रसादतः।
ब्रह्मज्ञानयुतो मर्त्यो जीवनमुक्तो न संशयः ॥७.८९॥

– आद्याकाली की कृपा से साधक ब्रह्मज्ञान प्राप्त करते हैं। कालिकातन्त्र (१३-१९ पटल) के मतानुसार जो देवी की सम्यक अर्चना करते हैं, उनके यहाँ सरस्वती तथा गृह में लक्ष्मी सदा विराजित रहती हैं और उनका सम्पूर्ण शरीर तीर्थस्वरूप हो जाता है।

भगवान श्रीरामकृष्ण देव की महासमाधि के समय माँ सारदा देवी रोते हुए बोलीं, 'ओ माँ काली तुम कहाँ चली गई?' इससे सिद्ध होता है कि भगवान श्रीरामकृष्ण देव माँ काली के ही स्वरूप थे। दूसरी ओर भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने स्वयं श्रीमाँ के बारे में कहा है, 'जो माँ मन्दिर में है, जिस माँ ने इस शरीर को जन्म दिया और जो इस समय मेरी पदसेवा कर रही है (माँ सारदादेवी), ये तीनों माँ आनन्दमयी के ही रूप हैं।' एक बार ठाकुर के भतीजे शिवलाल दादा ने माँ से पूछा, 'चाची, तुम कौन हो?' माँ ने कहा, 'सभी लोग मुझे काली कहते हैं।' इस बात को शिवलाल दादा ने माँ के मुख से ही तीन बार बुलवाया था। एक और दूसरी घटना में माँ ने अनेक भक्तों के सम्मुख स्वीकार किया है, 'मैं सत्य जननी हूँ, मैं कोई धर्म की माँ नहीं हूँ, गुरुपत्नी के रूप में भी नहीं हूँ। मैं सच्ची माँ हूँ।' माँ अनन्तरूपिणी, अनन्तगुणवती, अनन्तनाम्नी हैं। जय माँ! ○○○

सन्दर्भ सूची – १. श्रीरामकृष्ण-वचनामृत २. श्री सारदादेवी की जीवनी ३. काली-तंत्र ४. योगिनी-तंत्र ५. महानिर्वाण-तंत्र ६. कुब्जिका-तंत्र ७. तंत्रसार ८. तंत्रलोक, ९. देवीभगवत, १०. भगवद्गीता, ११.कालिकापुराण १२. मार्कंडेयपुराण, १३. अग्निपुराण, १४. कुलार्णव-तंत्र १५. निरुक्त-तंत्र १६. पिच्छिला-तंत्र १७. चामुण्डा-तंत्र, १८. विष्णुपुराण १९. वायुपुराण

नव भारत के निर्माण में महामना मालवीय जी का योगदान

के. के. पाराशर

जयन्ती विशेष

पूर्व महाप्रबन्धक, वित्त निगम एवं अध्यक्ष महामना मालवीय मिशन, जयपुर

सर्वप्रथम मैं इन काव्य पंक्तियों से श्रद्धेय महामना मालवीय जी के व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करना चाहता हूँ –

'धवल देह अरू वेश, धवल चरित कीरति धवल।
धवल कियौ निज देश, धवल ज्ञान विज्ञान सौं।।
मद नहिं परसत जाइ, मोह न मिलई सुभावमहँ।
मालवीय मन लाइ, हृदय हरौ हरषत सदा।।''

भारत की धरती पर समय-समय पर कालजयी महान आत्माओं का अवतरण होता रहा है, जिनके पावन सान्निध्य में देश ही नहीं, पूरी दुनिया 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की पवित्र भावना से अनुप्रेरित होती रही है। ऐसे ही कालजयी महापुरुषों की पावन परम्परा में एक अग्रगण्य नाम महामना पं. मदन मोहन मालवीय जी का है। उनका प्रत्येक कार्य आगे आनेवाली मानव-पीढ़ी के लिए एक महान संदेश बना। महामना का युगद्रष्टा, भविष्यस्रष्टा व्यक्तित्व भारतीय राजनीति, सामाजिक परिवर्तन एवं शिक्षा-व्यवस्था को अनुप्राणित करता रहा है।

महामना सत्य, त्याग, करुणा, अहिंसा, परोपकार इत्यादि मानवीय सद्गुणों की साक्षात प्रतिमूर्ति थे। उन्होंने भारत में आधुनिक शिक्षा की बुनियाद रखी। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। उनमें संवाद स्थापित करने की अद्भुत क्षमता थी। उनकी सहजता उनकी सरल भाषा से अभिव्यक्त होती है। वे परम्परा व आधुनिकता के अनूठे संगम थे। उनकी कार्य-शैली अनुपम थी। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के द्वारा उन्होंने प्राचीन और नवीन का, प्राच्य और पाश्चात्य का, धर्म और संस्कृत-विद्या से लेकर प्रौद्योगिकी का अद्भुत समन्वय किया। वे एक साथ ही अनेक क्षेत्रों के शिखर-पुरुष थे।

ऐसी शिक्षा के प्रबल पक्षधर, महान देशभक्त, राजनेता, अद्भुत वक्ता, सुविख्यात निर्भीक पत्रकार, समाज सुधारक, हिन्दी के सबसे बड़े समर्थक तथा पोषक, अपने समय के इलाहाबाद उच्च न्यायालय के सफलतम अधिवक्ता, आर्थिक सुधारों के प्रखर चिन्तक तथा अत्यन्त कोमल हृदयवाले, संवेदनशील, मृदुभाषी, आदर्श आचरण के धनी व्यक्तित्व को हम नमन करते हैं। अपने इतने सारे गुणों के कारण ही लोग उन्हें महामना कहते हैं। वे संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी भाषा में धारा प्रवाह व्याख्यान करने में प्रवीण थे। उनका एक प्रसिद्ध श्लोक है –

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम्।।

– मुझे न तो राज्य की कामना है और न स्वर्ग की, और न ही मैं पुनर्जन्म से मुक्ति चाहता हूँ। दुख से पीड़ित प्राणियों के कष्ट दूर करने में सहायक हो सकूँ, यही मेरी कामना है।

अपने इस चिन्तन के अनुरूप जीवन भर उन्होंने कार्य किया, व्यवहार किया तथा अपने देशवासियों का दुख दूर करने के लिए अन्तिम क्षण तक प्रयत्नशील रहे। उनकी शुरू से एक ही इच्छा थी कि हमारा भारत अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त हो तथा आर्थिक रूप से सम्पन्न व सुदृढ़ हो। इसके लिए भारतवासियों का शिक्षित होना और भारतीय धर्म व संस्कृति से ओत-प्रोत होना उन्होंने आवश्यक समझा। इसके लिए उन्होंने उस समय की अपनी चलती हुई वकालत को छोड़कर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना ५ फरवरी, १९१६ को की, जिसका उद्देश्य था – यह विश्वविद्यालय भारतीय धर्मशास्त्रों एवं संस्कृत साहित्य के प्रचार के साथ कला और विज्ञान की शिक्षा, घरेलू उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिए तकनीकी शिक्षा, धर्म और नीति की शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों के चारित्रिक गठन एवं विकास का केन्द्र रहेगा। उनकी इच्छा थी कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय देश में एक ऐसे केन्द्र के रूप में उभरे, जहाँ सब प्रकार की शिक्षा के साथ-साथ भारतीय धर्म और संस्कृति का अध्ययन-अध्यापन हो। इस विश्वविद्यालय से निकले हुए अभियन्ता, वैज्ञानिक, डॉक्टर, व्यापारी, राजनेता उच्च चरित्र तथा कठिन परिश्रमी हों और अपने आचरण से यह दिखा सकें कि वे एक महान विश्वविद्यालय से पढ़कर निकले हैं तथा सबसे पहले वे देशभक्त हैं और देश के लिए सोचते हैं।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना "प्रतीची-प्राची का मेल सुन्दर" जैसी विश्वकल्याण की ओर उन्मुख उदात्त भाव की परिणति है। मालवीय जी के इस प्रकल्प का उद्देश्य मात्र एक विश्वविद्यालय की स्थापना करना ही नहीं, वरन् इस विश्वविद्यालय के माध्यम से समाज, राष्ट्र एवं विश्व को उच्च शिक्षा की सम्यक् दृष्टि प्रदान करना है। उच्च शिक्षा की भारतीय दृष्टि उदात्तभाव एवं नैतिक मूल्यों से पुष्ट मानसिक, बौद्धिक तथा भौतिक रूप से स्वस्थ

मनुष्य एवं समाज की रचना करना है।

मालवीय जी के दृष्टिकोण से अन्य विषयों में शिक्षा के साथ-साथ इंजीनियरिंग और साइंस की शिक्षा का होना बहुत आवश्यक था, जिसके बिना देश की उन्नति सम्भव नहीं थी। इसी कारण उन्होंने १९१९ में देश का पहला मैकेनिकल व इलैक्ट्रिकल इंजीनियरिंग कॉलेज काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रारम्भ किया। इसके अलावा उन्होंने ग्लास टेक्नोलोजी, फार्मेस्युटीकल्स, कैमिस्ट्री, माइनिंग और मैटलर्जी, इंजीनियरिंग के साथ-साथ संस्कृत व आयुर्वेद के विभाग भी देश में प्रथम बार स्थापित किये। उन्होंने उस समय के श्रेष्ठतम विद्वानों को जैसे यू. सी. नाग, चार्ल्स ए. किंग, सर एस. एस. भटनागर, वी. वी. नारलीकर आदि को विश्वविद्यालय में शिक्षण के लिए बुलाया तथा विद्यार्थियों को उनसे शिक्षा दिलवाई।

मालवीय जी का यह मानना था कि शिक्षा और सत्य के मार्ग पर चलकर ही विद्यार्थियों में राष्ट्रीयता पैदा की जा सकती है तथा विज्ञान और तकनीकि एवं धर्म की संयुक्त तथा सन्तुलित शिक्षा से आर्थिक उन्नति प्राप्त की जा सकती है। यह विचारधारा मालवीय जी के विज्ञान और तकनीकि द्वारा राष्ट्र की सेवा के दृष्टिकोण को दर्शाती है। वे ऐसी शिक्षा चाहते थे, जो चरित्र-निर्माण करे, मनोबल बढ़ाये और बौद्धिक स्तर को विकसित करे, ताकि लोग स्वावलम्बी बन सकें।

मालवीय जी धार्मिक और नैतिक शिक्षा पर बहुत जोर देते थे। उनका मानना था कि नैतिक मूल्यों के अभाव में औद्योगिक विकास निरर्थक है। वे चाहते थे कि हमारे विद्यार्थी भारतीय संस्कृति और उसकी धरोहर से परिचित रहें, उसकी जड़ों से जुड़े रहें। आधुनिक विज्ञान से भी जुड़ें, पर दोनों में समन्वय हो। जहाँ हम भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठतम बातों को अपने जीवन में उतारें, वहीं हम आधुनिक नये विचारों की स्वच्छ हवा को भी आने दें। इससे जमीन से जुड़े रहकर देश प्रगति के मार्ग पर बढ़ सकेगा।

मालवीय जी द्वारा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रारम्भ किया गया साप्ताहिक गीता-प्रवचन विद्यार्थियों को धर्म से जोड़े रखने की एक सतत प्रक्रिया है। उपनिषद में धर्म के बारे में कहा गया है –

विद्या रूपं धनं शौर्यं कुलीनत्वमरोगिता।
राज्यं स्वर्गश्च मोक्षश्च सर्वं धर्मादवाप्यते।।

विद्या, रूप, धन, शूरवीरता, कुलीनता, निरोगिता, राज्य, स्वर्ग और मोक्ष, ये सब धर्म से प्राप्त होते हैं। मालवीय जी चाहते थे कि प्रत्येक विद्यार्थी प्रति सप्ताह डेढ़ घण्टा धर्म के लिये छोड़ दे। यही उनकी गुरु दक्षिणा है। उनका मानना था कि गीता-प्रवचन से विद्यार्थियों का कल्याण होगा और उनका जीवन परिवर्तित हो जाएगा। उनका कहना था कि विश्वविद्यालय में केवल विद्या ही प्राप्त नहीं करनी है, बल्कि इसके साथ-साथ चरित्र-निर्माण भी करना है। ज्ञान और चरित्र, दोनों का मेल कर देने से संसार में मान और गौरव प्राप्त होगा। विश्वविद्यालय के विद्यार्थी नियमित व्यायाम करें और अपने शरीर को सुदृढ़ बनावें। पहले स्वास्थ्य सुधारें, फिर विद्या पढ़ें। अपने जीवन को नियमित करें तथा चारित्रिक दृष्टि से दृढ़ रहें, सदाचारी रहें। अपनी रक्षा स्वयं करें। विश्वविद्यालय से आदर्श मनुष्य के रूप में बाहर निकलें तथा देश को हर क्षेत्र में ऊँचाइयों पर ले जाएँ तथा सेवा में अग्रणी रहें।

मालवीय जी चाहते थे कि स्वतन्त्र भारत एक शिक्षित और आर्थिक रूप से सम्पन्न सुदृढ़ राष्ट्र के रूप में उभरे। एक समय भारत को संसार के नैतिक अध्यापक के रूप में यानि 'जगत गुरु' के रूप में जाना जाता था। क्योंकि भारत का ज्ञान का स्तर ऊँचा था, इसके उच्च मानवीय मूल्य थे और यह सारे संसार को एक परिवार के रूप में मानता था।

वे चाहते थे कि भारत फिर से 'जगत गुरु' के रूप में उभरे। इसलिए उन्होंने नवयुवकों और विद्यार्थियों के लिए मुख्यरूप से निम्नलिखित सिद्धान्त प्रतिपादित किये –

१. भारतीय संस्कृति, मूल्यों, परम्पराओं और जीवन शैली के प्रति दृढ़ श्रद्धा और आस्था।

२. उनमें आई विसंगतियों तथा उनकी दुर्बलताओं का गम्भीर विश्लेषण और साथ-ही-साथ उनसे निपटने का सार्थक प्रयास।

३. सम्पूर्ण विश्व को ललचाती पाश्चात्य भौतिकता के प्रति कोई दुख या वैमनस्य न रखते हुए उसके उपयोगी तत्त्वों को स्वीकार करते हुए भी स्वयं को उसके नशीले लालच में न पड़ने देने की सजगता।

ग्रामीण विकास के लिए मालवीय जी की इच्छा थी कि विद्यार्थीगण अवकाश तथा छुट्टियों में गाँवों में जाकर गाँव वालों के साथ काम करें। पाठशालाएँ खोलें, जनता को

(शेष भाग पृष्ठ ६२३ पर)
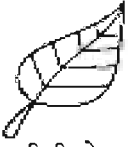
(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

५९. यह संसार कुत्ते की एक दुम जैसा है

एक गरीब आदमी को कुछ रुपयों की विशेष जरूरत थी। उसने कहीं सुना यदि वह एक भूत को अपने वश में कर ले, तो वह उससे धन अथवा जो चाहे, मँगवा सकता है। अत: वह एक भूत को पाने के लिये बड़ा चिन्तित था। वह एक ऐसे आदमी की तलाश करने लगा, जो उसे एक भूत दे सके। आखिरकार उसे एक साधु मिले, जिनके पास बड़ी शक्तियाँ थीं। उसने उनसे इस विषय में सहायता की प्रार्थना की।

महात्मा ने उससे पूछा, ''तुम भूत का क्या करोगे?''

उसने उत्तर दिया, ''महाराज, मैं भूत इसलिए चाहता हूँ कि वह मेरा काम कर दे। कृपा करके मुझे बता दीजिये कि उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है। मुझे उसकी बड़ी आवश्यकता है।''

साधु बोले, ''देखो, तुम स्वयं को इस झमेले में मत डालो और अपने घर लौट जाओ।''

अगले दिन वह व्यक्ति फिर महात्मा के पास जा पहुँचा और रो-रोकर प्रार्थना करने लगा, ''महाराज, मुझे एक भूत दे दीजिए। मुझे अपने काम के लिये एक भूत की बड़ी जरूरत है।''

अन्त में साधु कुछ चिढ़-से गये और बोले, ''तो ठीक है, यह मन्त्र लो। इसका जप करने से एक भूत प्रकट होगा और तुम उससे जो काम कहोगे, वही करेगा। परन्तु देखो, सावधान रहना! ये लोग बड़े भयंकर होते हैं। उन्हें निरन्तर काम में लगाये रखना पड़ता है। यदि कभी तुम उसे काम नहीं दे सके, तो वह तुम्हारा प्राण ही ले लेगा।''

वह आदमी बोला, ''यह तो बड़ी आसान बात है। मैं उसे इतना काम दे सकता हूँ कि जीवनभर समाप्त न हो।''

इसके बाद वह व्यक्ति एक वन में गया और मन्त्र का जप करने लगा। काफी समय तक जप करने के बाद उसके सामने विकराल दाँतों वाला एक बड़ा भयंकर भूत प्रकट हुआ। वह बोला, ''देखो, मैं भूत हूँ। तुम्हारे मन्त्र ने मुझे जीत लिया है। परन्तु तुम्हें मुझको निरन्तर काम में लगाये रखना होगा। ज्योंही तुम मुझे काम देना बन्द करोगे, त्योंही मैं तुम्हारे प्राण ले लूँगा।''

आदमी बोला, ''ठीक है, जाओ, मेरे लिए एक महल बनाओ।'' भूत ने उत्तर दिया, ''लो, हो गया, महल तैयार है।''

आदमी बोला, ''जाओ, मेरे लिए धन ले जाओ।''

भूत ने कहा, ''लो, धन भी तैयार है।''

वह व्यक्ति बोला, ''यह जंगल काट डालो और उसके स्थान पर यहाँ एक शहर बसा दो।''

भूत बोला, ''लो, वह भी हो गया। अब और क्या करूँ, जल्दी बताओ?''

अब तो वह आदमी बड़ा घबड़ाने लगा; उसने सोचा, ''अब तो मेरे पास कोई काम ही नहीं है, जो मैं इससे करने को कहूँ। यह तो हर काम क्षण भर में ही कर डालता है।''

भूत गरजते हुए बोला, ''देखो, जल्दी से मुझे कोई काम दो, अन्यथा मैं तुम्हें खा जाऊँगा।'' बेचारा आदमी अब उसके लिये कोई काम ही नहीं सोच सका और डर के मारे थर-थर काँपने लगा। दूसरा कोई उपाय न देख, वह तेजी से भागा। भागते-भागते उन्हीं साधु के पास पहुँचा और गिड़गिड़ाने लगा, ''महाराज, मेरी रक्षा कीजिए।''

साधु ने पूछा, ''बोलो, क्या बात है?'' उसने उत्तर दिया, ''अब तो मेरे पास उस भूत को देने के लिए कोई भी काम शेष नहीं है। मैं उससे जो कुछ भी करने को कहता हूँ, वह क्षण भर में ही कर डालता है, और जब उसके पास कोई काम नहीं रह जाता, तो मुझे खा डालने की धमकी देता है। अब मैं क्या करूँ?''

उसी समय वह भूत भी वहाँ आ पहुँचा और कहने लगा, ''अब तो मैं तुम्हें खा ही जाऊँगा।'' वह सचमुच ही उसे खाने को तैयार था। वह आदमी डर के मारे काँपने लगा और उसने साधु से अपने प्राणों की भिक्षा माँगी।

साधु ने कहा, ''ठीक है, मैं तुम्हें इस संकट से निकलने का एक उपाय बताता हूँ। वह देखो, वहाँ एक टेढ़ी पूँछवाला कुत्ता खड़ा है। तुरन्त अपनी तलवार

निकालो और उसकी पूँछ को काटकर इस भूत के हाथ में देकर उससे कहो कि वह इसे सीधी कर दे।''

आदमी ने झट से कुत्ते की पूँछ काट ली और उसे भूत को देते हुए कहा, ''लो, इसे सीधी करके ले आओ।''

भूत ने पूँछ ले ली और उसे बड़ी सावधानी के साथ धीरे-धीरे सीधी की, परन्तु उसने ज्योंही उसको छोड़ा, त्योंही वह फिर टेढ़ी हो गयी। भूत ने दुबारा बड़ी मेहनत करके उसे सीधी की, परन्तु ज्योंही उसने छोड़ा, त्योंही वह फिर टेढ़ी हो गयी। उसने बड़े धैर्य के साथ एक बार फिर उसको सीधा किया, परन्तु छोड़ते ही वह फिर पहले जैसी टेढ़ी हो गयी। इस प्रकार वह दिन-पर-दिन प्रयास करता रहा। अन्त में वह थक गया और अपने मालिक से बोला, ''मुझे अपने जीवन में पहले कभी इतना कष्ट नहीं हुआ। मैं एक बड़ा पुराना भूत हूँ, परन्तु ऐसे संकट में तो मैं कभी नहीं पड़ा।''

इसके बाद भूत ने उस आदमी से कहा, ''चलो, हम दोनों आपस में एक समझौता कर लें। तुम मुझे छोड़ दो; और मैंने अभी तक तुम्हें जो कुछ दिया है, वह सब तुम अपने पास ही रखे रहो। मैं वादा करता हूँ, अब आगे से तुम्हें किसी प्रकार कष्ट नहीं दूँगा।''

यह सुनकर वह आदमी बड़ा खुश हुआ और उसने बड़ी प्रसन्नता के साथ इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

हमारा यह संसार भी कुत्ते की उस टेढ़ी पूँछ के ही समान है। सैकड़ों वर्षों से लोग इसे सीधा करने की चेष्टा कर रहे हैं, परन्तु वे ज्योंही इसे छोड़ देते हैं, त्योंही यह फिर पहले जैसा टेढ़ा हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह हो भी क्या सकता है? मनुष्य पहले यह सीख ले कि अनासक्त होकर कैसे कर्म किया जा सकता है, तभी वह मतान्धता या दुराग्रह से मुक्त हो सकेगा। जब हम जान लेते हैं कि यह संसार कुत्ते की टेढ़ी दुम के समान है और यह कभी सीधा नहीं हो सकता, तभी हम मतान्धता या दुराग्रह के परे हो सकते हैं। यदि संसार में यह दुराग्रह न होता, तो अब तक यह काफी उन्नति कर चुका होता। (३/५२-५४)

प्रेरणा

यदि अपना घर बचाना चाहते हो, तो पहले दूसरे का घर बचाओ

शीला

गाँव में मेरा एक छोटा, लेकिन अच्छा-सा मकान है। मेरे घर के आसपास झुग्गी-झोपड़ियाँ बसी हुई हैं। मेरा उनके साथ खास कोई सम्बन्ध नहीं। अब एक दिन एक घटना घटी। हुआ यह कि किसी ने बीड़ी सुलगाकर दियासलाई ऐसे फेंकी कि वह पास की घास की झोंपड़ी पर जा पड़ी और देखते-देखते आग लग गयी। हवा के कारण आग की जो लपटें बढ़ीं, वह सभी घरों को भस्मीभूत करती हुई मेरे घर को भी जलाने के लिए आ धमकी। तब मैं जगी और चिल्लाने लगी, ''मैंने तो कुछ किया नहीं, फिर भी मेरा घर क्यों जला?'' इस प्रकार मैं कुछ देर चिल्लाती रही और देखते-देखते मेरा घर भी जलकर भस्म हो गया। तब मेरे अन्तःकरण से आवाज आयी, ''तुम्हारा घर इसलिए जला कि जब पहली झोपड़ी जल रही थी, तब तुम दूसरों का घर जलना देखती रही। उसे बुझाने के लिए दौड़कर आगे नहीं बढ़ी। आज समाज में जो अन्याय, अत्याचार और शोषण हो रहा है, उसके मूक साक्षी बने रहना, यह भी एक बड़ा सामाजिक अपराध है। सज्जनों की निष्क्रियता, समाज में चल रहे अन्याय और अपराध के प्रति उनकी उपेक्षा की भावना आज की परिस्थिति का मूल कारण है।

अतः यदि अपना घर बचाना चाहते हो, तो दूसरे के जलते घर को बचाने का प्रयत्न करो। ○○○

(मैत्री, फरवरी २०१३ से साभार)

(पृष्ठ ६२१ का शेष भाग)

पढ़ने-लिखने की शिक्षा दें और अविद्या रूपी अन्धकार को हटाएँ। धर्म की अर्थात् सहनशीलता, क्षमा तथा प्रेम युक्त सेवा के धर्म की शिक्षा दें। सुचारु रूप से पढ़ने व पढ़ाने से मनुष्य मात्र में सुख तथा एकता का संचार होगा। निरक्षरता को हटाएँ और ग्रामीणों को साक्षर बनाएँ। शिक्षा के प्रति उनकी रुचि जाग्रत करें, जिससे ग्रामवासी अपने बच्चों को बेझिझक पढ़ने को भेजें। स्वच्छता, स्वास्थ्य, धर्म, एकता, देश की उन्नति के बारे में उन्हें जागरूक करें। विद्यार्थियों को चाहिए कि वे देश के सभी शिक्षित नवयुवकों को इस महान कार्य में हाथ बँटाने के लिए आमन्त्रित करें। हर-एक आदमी समाज की उन्नति के लिए कुछ-न-कुछ सहयोग कर सकता है। मालवीय जी का यह दृढ़ विश्वास था कि देश तभी शक्तिशाली और उन्नत बन सकता है, जब सभी सम्प्रदायों के बीच पारस्परिक सद्भावना और एकता हो। ○○○

जीवन कर्म : एक चिन्तन

डॉ. जया सिंह
प्रो. मैटस विश्वविद्यालय, आरंग, रायपुर (छ.ग.)

जीवन में सारे धर्म और कर्म की उपासना हमें एक लक्ष्य की ओर ले जाती है। यह चरम लक्ष्य क्या है? मुक्ति ! जी हाँ, मुक्ति जिसके लिए आज सभी संघर्षरत हैं। परमाणु से लेकर मनुष्य तक, जड़तत्त्व के अचेतन प्राणहीन कण से लेकर इस पृथ्वी की सर्वोच्च सत्ता मानवात्मा तक, जो कुछ हम इस विश्व में देखते हैं, वे सभी मुक्ति के लिये ही संघर्ष कर रहे हैं। चेतन-अचेतन सारी प्रकृति का लक्ष्य मुक्ति ही है। जाने-अनजाने सारा जगत इसी लक्ष्य की ओर पहुँचने का यत्न कर रहा है।

नि:स्वार्थ कर्म से मानव जीवन के चरम लक्ष्य, इस मुक्ति को प्राप्त कर लेना ही कर्मयोग है। अतएव हमारा प्रत्येक स्वार्थपूर्ण कार्य अपने इस लक्ष्य तक पहुँचने में बाधक होता है तथा प्रत्येक नि:स्वार्थ कर्म हमें उसकी ओर आगे बढ़ाता है। इसलिए नैतिकता की यह भी एक परिभाषा हो सकती है कि 'जो स्वार्थी है, वह 'अनैतिक' है और जो नि:स्वार्थी है, वह 'नैतिक' है।

परिवेश इस सन्दर्भ में विविधता ला देता है। किसी एक परिस्थिति में जो कार्य नि:स्वार्थ है, वही किसी दूसरी परिस्थिति में बिल्कुल स्वार्थी हो सकता है। अत: देश-काल-परिस्थिति के अनुसार हम कर्तव्य-कर्म का त्याग कर सकते हैं। एक देश में एक प्रकार का आचरण नैतिक होता है, परन्तु वही किसी दूसरे देश में अनैतिक हो जाता है। क्योंकि परिस्थितियाँ भिन्न होती हैं। समस्त प्रकृति का अन्तिम ध्येय मुक्ति है। यह मुक्ति केवल पूर्ण नि:स्वार्थता द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। प्रत्येक नि:स्वार्थ कार्य, वचन और विचार, हमें इसी ध्येय की ओर ले जाता है, इसीलिए हम उसे नैतिक कहते हैं। यह परिभाषा प्रत्येक धर्म एवं प्रत्येक नीतिशास्त्र में मान्य है। अतएव कर्मयोग, नि:स्वार्थपरता और सत्कर्म द्वारा मुक्ति प्राप्त करने का एक धर्म और नीतिशास्त्र है।

नीतिशास्त्र के अनुसार जीवन यापन का विचार करना मानव जीवन के उत्कर्ष एवं अभ्युदय का आधार है। विचार एक संसाधन है, जिसे नियन्त्रित, संयमित एवं उपयोगी बनाकर जीवन में चमत्कारी परिवर्तन एवं आश्चर्यजनक परिणाम उत्पन्न किए जा सकते हैं। जो इनके प्रभाव-परिणाम से परिचित होते हैं, वे इनका उपयोग कर असम्भव चुनौतीपूर्ण कार्यों को भी सम्भव और सरल बना लेते हैं, परन्तु विचारशक्ति की महिमा से अपरिचित अनभिज्ञ व्यक्तियों को हेय एवं उपेक्षित जीवन जीने के लिये विवश होना पड़ता है।

यौगिक मान्यता है कि योगी का विचार ही उसका कर्म बनता है। विचार जब आचरण में उतरते हैं, तो कर्म बनते हैं। यही कारण है कि प्रकृति प्रतिदिन हमारे मन-मस्तिष्क में टनों नकारात्मक सूचनाओं और विचारों की बमबारी करती है। किसी व्यक्ति, परिस्थिति, घटना एवं एकाकीपन में भी यह भीषण त्रासदी घटती रहती है। इसके बचने का एक मात्र उपाय है, इसे अपने मन-मस्तिष्क में स्थान देने, सम्बन्ध बनाने एवं 'जरा ठहरो, इनका आनन्द लें' जैसी मानसिकता से बचना।

हर व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह अपने मन-मस्तिष्क की क्षमता का सदुपयोग करे। आपको क्या सोच-विचार करना है, यह आपकी चयन-क्षमता, निर्णय एवं कुशलता के ऊपर निर्भर करता है। इसका चयन और विश्लेषण आपको ही करना है। जब आप सकारात्मक तथ्यों, घटनाओं पर विचार करने का निर्णय लेते हैं, तो इससे आपका चिन्तन उत्कृष्ट होता है और आप शक्ति एवं ऊर्जा के असीम भण्डार से जुड़ जाते हैं। अनायास अनेक सृजनशील योजनाएँ बनने लगती हैं। परन्तु जब आप उन घटनाओं या व्यक्तियों के बारे में सोचते हैं, जिनसे बैचेनी होती है, तो शक्ति का ह्रास होता है और सृजनशील ऊर्जा का भण्डार समाप्त होने लगता है। अत: हमें मन में शान्तिप्रद विचारों का चिन्तन करना चाहिए और जो बेचैन करे, उससे बचना चाहिए।

सकारात्मक विचारों के चिन्तन-मन्थन हेतु मस्तिष्क को प्रशिक्षित करें। नकारात्मक चिन्तन अवनति एवं पतन के मार्ग पर ले जाते हैं, इसलिये उस चिन्तन से सदा दूर रहें। इसके लिये सबसे अच्छा उपाय है कि आप स्वयं से पूछें कि जो विचार आपमें उठ रहा है, क्या वह आपको अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचा सकता है? यदि आपको लगता है कि नहीं पहुँचा सकता, तो समझ लीजिए कि आप समय एवं ऊर्जा को व्यर्थ गँवा रहे हैं और सही दिशा में लग जाइए। हमें सदैव श्रेष्ठ, शुभ, मंगलमय चिन्तन करना चाहिए, जिससे व्यक्तित्व निखर उठे और सुवासित हो। OOO

मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ भावप्रचार परिषद की अर्द्धवार्षिक सभा सम्पन्न हुई

१९ और २० सितम्बर, २०१५ को मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ भाव-प्रचार परिषद की सभा विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में आयोजित की गई, जिसमें रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव और भावप्रचार परिषद के अध्यक्ष स्वामी सत्यरूपानन्द जी, रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के सचिव और परिषद के उपाध्यक्ष स्वामी व्याप्तानन्द जी, रामकृष्ण मिशन, इन्दौर के सचिव, स्वामी निर्विकारानन्द जी, रामकृष्ण आश्रम, ग्वालियर के स्वामी राघवेन्द्रानन्द जी, स्वामी प्रियव्रतानन्द जी, होशंगाबाद के स्वामी वीरेशानन्द जी, बिलासपुर के स्वामी एकात्मानन्द जी ने भाग लिया। १९ सितम्बर प्रात: सत्र में सन्तों और विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा के विभिन्न विषयों पर व्याख्यान हुए। उसके बाद विभिन्न केन्द्रों से आगत प्रतिनिधियों ने अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत किए। शाम को विवेकानन्द विद्यापीठ के संगीत शिक्षक कैलास यादव ने अपने सहयोगी छात्रों के साथ बहुत ही मधुर और मार्मिक लीलागीति प्रस्तुत किया। २० सितम्बर को प्रथम सत्र में चर्चा, द्वितीय में नया रायपुर और संस्कृति विभाग में भ्रमण तथा शाम को राजस्थानी कलाकारों के द्वारा आकर्षक लोक-नृत्य और कलाकारियाँ प्रस्तुत की गईं। सभा का प्रारम्भिक संचालन विवेकानन्द विद्यापीठ के कार्यालय-प्रमुख श्री मनोज यादव और अन्य सभी सत्रों का संचालन भावप्रचार परिषद के संयोजक श्री हिमाचल मढ़रिया ने किया। कुल २१ केन्द्रों में से १५ केन्द्रों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। ५८ पुरुष और १४ महिलाएँ, कुल ७२ प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

रामकृष्ण सेवा मंडल, भिलाई में ३१ जुलाई, २०१५ की शाम को 'गुरु की महिमा' पर स्वामी प्रपत्त्यानन्द और डॉ. ओमप्रकाश वर्मा के व्याख्यान हुए।

२१ सितम्बर, २०१५ को रामकृष्ण मठ, मुम्बई के अध्यक्ष स्वामी सर्वलोकानन्द जी महाराज का भिलाई इस्पात संयन्त्र में व्याख्यान हुआ। शाम को रामकृष्ण सेवा मंडल, भिलाई के मन्दिर में भी स्वामीजी का व्याख्यान हुआ।

विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर में ११ सितम्बर, १०१५ को विश्वबन्धुत्व दिवस मनाया गया, जिसमें स्वामी सत्यरूपानन्द और अन्य वक्ताओं ने व्याख्यान दिया।

२२ सितम्बर, २०१५ को १० बजे विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में रामकृष्ण मठ, मुम्बई के अध्यक्ष स्वामी सर्वलोकानन्द जी का व्याख्यान हुआ।

अम्बिकापुर में विश्वभ्रातृत्व दिवस मनाया गया

११ सितम्बर, २०१५ को शाम ४ से ६ बजे तक विवेकानन्द सेवाश्रम, अम्बिकापुर में स्वामी विवेकानन्द जी ऐतिहासिक शिकागो भाषण की स्मृति में विश्वभ्रातृत्व दिवस मनाया गया। इसमें पाँच धर्मों के आचार्यों ने सभा को सम्बोधित किया।

शिमला, रामकृष्ण मिशन आश्रम में १९ सितम्बर, २०१५ को आयोजित प्रथम युवा शिविर में कुल ५६ युवाओं ने भाग लिया। आश्रम के सचिव स्वामी नीलकण्ठानन्द और 'वेदान्त केसरी' अंग्रजी पत्रिका के सम्पादक स्वामी आत्मश्रद्धानन्द, डॉ. डी. जी. वाकड़े, अमरावती और हिमाचल प्रदेश के श्री राकेश शर्मा ने युवाओं को सम्बोधित किया। इसके अलावा २० सितम्बर को आध्यात्मिक शिविर का आयोजन हुआ, जिसमें ६१ शिविरार्थियों ने भाग लिया। शिमला आश्रम का शुभारम्भ १५ नवम्बर, २०१४ को हुआ था।

चेन्नई, रामकृष्ण मिशन स्टुडन्ट्स होम में ११ सितम्बर, २०१५ को नवनिर्मित छात्रावास डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ब्लॉक, का उद्घाटन श्रद्धेय स्वामी गौतमानन्द जी महाराज के करकमलों द्वारा हुआ।

पुरी, रामकृष्ण मिशन में ११ सितम्बर को युवा शिविर का आयोजन हुआ, जिसमें ४०० युवाओं ने भाग लिया।

OOO

‘विवेक-ज्योति’ में वर्ष २०१५ ई. में प्रकाशित लेखकों तथा उनकी रचनाओं की सूची

सुकरात और देशभक्ति

अभय कुमार जैन

सुकरात को मृत्युदण्ड सुनाया जा चुका था। वे काल-कोठरी में बन्द मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। एक दिन सिपाहियों से मिलकर सुकरात का सबसे प्रिय और श्रद्धालु शिष्य करोटी जेल की उस काल कोठरी में पहुँच गया। उसने अत्यन्त विनम्रता से अनुरोध किया, “गुरुदेव, मैंने सब व्यवस्था कर ली है। आपको जेल से बाहर निकालने में किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं होगी। जैसे ही आप बाहर जाएँगे, मेरा सारा धन आपको समर्पित हो जाएगा, तब आप बड़े आराम से किसी दूसरे देश में जाकर अपना जीवन व्यतीत कर सकेंगे। यहाँ तो आपकी मृत्यु निश्चित है।” अपने प्रिय श्रद्धालु शिष्य के आग्रह को सुनकर सुकरात ने सहज भाव से कहा, “प्रियवर, मैं तुम्हारी गुरुभक्ति और स्नेह के लिए बहुत धन्यवाद देता हूँ। परन्तु खेद है कि तुम्हारे आग्रह और अनुरोध को स्वीकार नहीं कर सकता। क्योंकि मैंने जिस देश की धरती पर जन्म लिया, जिसकी मिट्टी में खेल-खेलकर बड़ा हुआ, जिसके समीर में अब तक साँस लेकर जी रहा हूँ, उस पावन पवित्र मातृभूमि को मृत्यु के डर से छोड़कर क्या कायरों की तरह स्वदेश छोड़कर विदेश चला जाऊँ? यह तो मातृभूमि द्वारा मेरे ऊपर किए गए उपकारों के प्रति विश्वासघात है। मृत्यु तो अवश्यम्भावी है। एक-न-एक दिन अवश्य आएगी, फिर क्यों न अपने प्राणों का उत्सर्ग उस मिट्टी से करूँ, जिसने मुझे जन्म दिया, प्राण दिया। मेरा प्राण मेरे देश की अमानत है, उस अमानत को उसे सौंपना ही मेरा कर्तव्य है।” शिष्य इस फैसले को सुनकर अवाक् रह गया और वह गुरु के चरणों में झुक गया। ○○○

अन्य संकलन

OOO